कल्याण



लक्ष्मीजीका स्वयंवर





भगवान् सूर्य

उॐ पूर्णमदः पूर्णिमदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

यजापः सकृदेव गोकुलपतेराकर्षकस्तत्क्षणाद्यत्र प्रेमवतां समस्तपुरुषार्थेषु स्फुरेत्तुच्छता। यन्नामाङ्कितमन्त्रजापनपरः प्रीत्या स्वयं माधवः श्रीकृष्णोऽपि तदद्भुतं स्फुरतु मे राधेति वर्णद्वयम्॥

वर्ष ९३ गोरखपुर, सौर मार्गशीर्ष, वि० सं० २०७६, श्रीकृष्ण-सं० ५२४५, नवम्बर २०१९ ई० पूर्ण संख्या १११६

आदिदेव भगवान् सूर्यनारायणको नमस्कार

आदिदेवोऽसि देवानामैश्वर्याच्य त्वमीश्वरः । आदिकर्तासि भूतानां देवदेवो दिवाकरः॥

× × × × ×

प्रदीप्तं दीपनं दिव्यं सर्वलोकप्रकाशकम् । दुर्निरीक्ष्यं सुरेन्द्राणां यद्रूपं तस्य ते नमः॥

सुरसिद्धगणैर्जुष्टं भृग्वत्रिपुलहादिभिः । स्तुतं परममव्यक्तं यद्रूपं तस्य ते नमः॥

वेद्यं वेदिवदां नित्यं सर्वज्ञानसमन्वितम् । सर्वदेवादिदेवस्य यद्रूपं तस्य ते नमः॥ [ब्रह्माजी कहते हैं—] भगवन्! तुम आदिदेव हो। ऐश्वर्यसे सम्पन्न होनेके कारण तुम देवताओंके ईश्वर हो।

सम्पूर्ण भूतोंके आदिकर्ता भी तुम्हीं हो। तुम्हीं देवाधिदेव दिवाकर हो।××× तुम्हारा जो स्वरूप अत्यन्त तेजस्वी, सबका प्रकाशक, दिव्य, सम्पूर्ण लोकोंमें प्रकाश बिखेरनेवाला और देवेश्वरोंके द्वारा भी कठिनतासे देखे जानेयोग्य है, उसको

हमारा नमस्कार है। देवता और सिद्ध जिसका सेवन करते हैं, भृगु, अत्रि और पुलह आदि महर्षि जिसकी स्तुतिमें संलग्न रहते हैं तथा जो अत्यन्त अव्यक्त है, उस तुम्हारे स्वरूपको हमारा प्रणाम है। सम्पूर्ण देवताओंमें उत्कृष्ट तुम्हारा जो रूप

वेदवेत्ता पुरुषोंके द्वारा जाननेयोग्य, नित्य और सर्वज्ञानसम्पन्न है, उसको हमारा नमस्कार है।[ब्रह्मपुराण]

राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।। (संस्करण २,००,०००) कल्याण, सौर मार्गशीर्ष, वि० सं० २०७६, श्रीकृष्ण-सं० ५२४५, नवम्बर २०१९ ई० विषय-सूची पृष्ठ-संख्या विषय विषय पुष्ठ-संख्या १ - आदिदेव भगवान् सूर्यनारायणको नमस्कार ३ १५ - माँ विन्ध्यवासिनीकी स्तुति (डॉ॰ महेशजी पाण्डेय 'बजरंग') २३ १६- भाग्य-पुरुषार्थ-विवेक (ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वर चैतन्यजी ३ - लक्ष्मीजीका स्वयंवर [आवरणचित्र-परिचय]६ महाराज, अखिल भारतवर्षीय धर्मसंघ)......२४ ४- शरणागति और प्रेम १७- विश्वासघातका दण्ड २७ १८- भगवती सीता तथा द्रौपदीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त.......२८ (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)७ ५- करने-न करनेका अभिमान छोड दो १९- संत-वचनामृत (वृन्दावनके गोलोकवासी सन्त पूज्य (ब्रह्मलीन स्वामी श्रीअखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज) १० श्रीगणेशदासजी भक्तमालीके उपदेशपरक पत्रोंसे)...... ३० २०- ईश्वराराधना और धार्मिकता क्या है? (श्रीगजाननजी पाण्डेय)..३१ ६ - ईश्वर-चर्चा (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ... १२ २१ - ज्योति प्रज्वलित हो गयी (श्रीबलविन्दरजी 'बालम') ३२ २२- अनुकूलता और प्रतिकूलतामें प्रेमी भक्तकी अनुपम साधना ७- नाम-स्मरण (समर्थ सद्गुरु श्रीब्रह्मचैतन्यजी महाराज गोंदवलेकर) १४ (श्रीभीकमचन्दजी प्रजापति) ३४ ८- महर्षि रमणकी मूक पशु-पक्षियोंके प्रति करुणा-भावना २३- दोष भूलका परिणाम है (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) ३७ (श्रीशिवकुमारजी गोयल)१५ ९- शरीर नहीं, परमात्मा अपने हैं [साधकोंके प्रति—] २४- दुष्कर्म पराभव, अपमान और दु:खका कारण...... ३८ (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) १६ २५- गोमाताद्वारा प्राणरक्षाकी दो घटनाएँ....... ३९ १०- श्रीरामचरितमानस—एक महान् कविकी अद्भुत कृति २६- औघड बाबा श्रीशंकर स्वामी (श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट) ४१ (आचार्य डॉ॰ श्रीकेशवरामजी शर्मा)१८ २७- साधनोपयोगी पत्र४२ ११- शत्रुको मित्र बना लेना ही बुद्धिमानी है१९ २८- व्रतोत्सव-पर्व [मार्गशीर्षमासके व्रतपर्व]४४ २९- व्रतोत्सव-पर्व [पौषमासके व्रतपर्व].....४५ १२- पतनके कारण......२० ३०- कृपानुभूति४६ १३- जीव-शिक्षा-सिद्धान्त [स्वामी श्रीहरिदासजीकृत अष्टादश पद]... २१ १४- संत-स्मरण (परम पूज्य देवाचार्य श्रीराजेन्द्रदासजी महाराजके ३१ - पढ़ो, समझो और करो४७ गीताभवन, ऋषिकेशमें हुए प्रवचनसे साभार)......२३ ३२- मनन करने योग्य......५० चित्र-सूची १- लक्ष्मीजीका स्वयंवर.......आवरण-पृष्ठ ३- लक्ष्मीजीका स्वयंवर.......६ ४- द्रौपदीका गिरना (🤫 ५- औघड़ बाबा श्रीशंकर स्वामी (🕠 ६ - धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्तीका दावानलसे दग्ध होना (🕠

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय । सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥ जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥ एकवर्षीय शुल्क जगत्पते। गौरीपति विराट जय रमापते ॥ ₹ २५०

विदेशमें Air Mail) वार्षिक US\$ 50 (₹ 3,000) Us Cheque Collection पंचवर्षीय US\$ 250 (₹ 15,000) Charges 6\$ Extra

पंचवर्षीय शल्क

₹ १२५०

संस्थापक - ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आदिसम्पादक — नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

सम्पादक - राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक - डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

e-mail: kalyan@gitapress.org website: gitapress.org £ 09235400242 / 244

सदस्यता-शुल्क —व्यवस्थापक — 'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस — २७३००५, गोरखपुर को भेजें।

Online सदस्यता हेतु gitapress.org पर Kalyan या Kalyan Subscription option पर click करें। अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क gitapress.org अथवा book.gitapress.org पर नि:शुल्क पढें। संख्या ११] कल्याण कल्याण याद रखो-जगत्में जितने भी चराचर प्राणी करते हो, तो भगवान् तुम्हारे तिलक-मालाओं, खादीके कपड़ों या सेवकके स्वाँगसे प्रसन्न हैं. सबके अन्दर आत्मा तथा अन्तर्यामीरूपसे भगवान् विराजमान हैं। भगवान् ही उन सब नहीं होंगे। रूपोंमें प्रकट हैं। अतएव उनकी सेवा करना, याद रखो-यदि तुम अपने मनमें दम्भ-उन्हें सुख पहुँचाना और उनका हित करना दर्प, वैर-विरोध, क्रोध-हिंसा, अभिमान-गर्व, तम्हारा धर्म है। छल-कपट और राग-द्वेष आदिको भी रखते याद रखो-यदि तुम जगत्के प्राणियोंसे हो और ऊपरसे साधु बने रहते हो तो भगवान् द्वेष-द्रोह करते हो, कठोर वचन कहकर उन्हें तुम्हारी उस कृत्रिम साधुतासे और तुम्हारी मर्म-पीडा पहुँचाते हो, क्रोध तथा अभिमानके उपदेशभरी शास्त्रवाणीसे प्रसन्न नहीं होंगे। वश होकर उनका अपमान-तिरस्कार करते हो याद रखो-भगवानुकी प्रसन्तताके लिये एवं कामना और लोभके फंदेमें पड़कर उनका किसी बाहरी आडम्बरकी, वेशभूषाकी, स्वत्व-हरण करते हो तो तुम्हारे बाहरी पूजन बोलचालके ढंगकी, उपदेश-आदेश देनेकी, और दानसे भगवान् कभी प्रसन्न नहीं होंगे। किसी प्रकारका स्वाँग बनानेकी और साधुका याद रखो-यदि तुम छल-कपट करके वेश धारण करनेकी आवश्यकता नहीं है। लोगोंका धन लूटते हो, मीठे बोल बोलकर भगवान्की प्रसन्नताके लिये तो चाहिये—निर्मल दुसरोंको धोखा देते हो, अपने अधिकार तथा मन, जिसमें अहिंसा, सत्य, अलोभ, सन्तोष, शक्तिका प्रयोग करके गरीबों और असहायोंको दया, अस्तेय, अमानिता, अदम्भिता, वैराग्य, दबाते हो तो तुम्हारे बाहरके आडम्बरसे भगवान् प्रेम, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, नम्रता, कभी प्रसन्न नहीं होंगे। मध्रता, गम्भीरता, धीरता, सहिष्ण्ता, श्चिता, याद रखो—तुम यदि अनाथों और श्रद्धा, धर्मभीरुता, क्षमा और ऋजुता आदि दैवी गुण भरे हों और सबसे प्रधान रूपमें असमर्थींको डराकर या फुसलाकर अनुचित लाभ उठाते हो; सत्ता, वैभव और पदके चाहिये—भगवान्के प्रति मनमें अहैतुकी विशुद्ध प्रभावसे गरीब पडोसियोंके घर-द्वार छीनते हो भक्ति। एवं अधिकारियोंके साथ षड्यन्त्र करके सरल याद रखो-मानव-जीवन बहुत थोड़े कालके लिये प्राप्त हुआ है और प्राप्त हुआ है हृदयके लोगोंको ठगते हो तो तुम्हारी पद-मर्यादा, नेतागिरी या थोथे धर्मात्मापनसे भगवान भगवानुको प्रसन्न करके उनको प्राप्त करनेके कभी प्रसन्न नहीं होंगे। लिये। यदि यह कार्य इस जीवनमें न बन याद रखो-यदि तुम विधवाओंके धनको पडा और विषय-विलासमें ही जीवन बीत गया धोखेसे हडप जाते हो, उनका अपमान-तिरस्कार तो उससे केवल जीवनकी व्यर्थता ही नहीं करते हो, उनके साथ बुरा व्यवहार करते हो होगी, महान पापका संग्रह भी होगा, और उनको मीठी-मीठी बातोंमें फँसाकर धर्मच्युत अनन्तकालतक दुःख देता रहेगा। 'शिव'

देवताओं और दैत्योंने पुन: समुद्रको मथना आरम्भ किया।

आवरणचित्र-परिचय

लक्ष्मीजीका स्वयंवर उसे भगवान् विष्णुकी सेवामें भेंट कर दिया। तदनन्तर



क्षीरसागरका मन्थन किया तो उसमेंसे सर्वप्रथम हालाहल विष उत्पन्न हुआ। उस लोकसंहारकारी कालकूट विषको भगवान् शिवने स्वयं अपना ग्रास बना लिया। इस प्रकार भगवान् शंकरकी बड़ी भारी कृपा होनेसे देवता, असुर, मनुष्य तथा सम्पूर्ण त्रिलोकीकी उस समय कालकूट विषसे रक्षा हुई।

समुद्रसे देवकार्यकी सिद्धिके लिये अमृतमयी कलाओंसे परिपूर्ण चन्द्रदेव प्रकट हुए। इसके बाद पुन: मन्थन प्रारम्भ करनेपर देवकार्योंकी सिद्धिके लिये साक्षात् सुरभि (कामधेनु) प्रकट हुईं। उन्हें काले, श्वेत, पीले, हरे तथा लाल रंगकी सैकड़ों गौएँ घेरे हुए थीं। देवताओं और दैत्योंने भगवान् शंकरकी प्रसन्नताके लिये वे सब गौएँ ऋषियोंको दान कर दीं। तत्पश्चात् सब लोग बड़े जोशमें

पुनः बड़े वेगसे समुद्र-मन्थन आरम्भ किया। इस बारके

मन्थनसे रत्नोंमें सबसे उत्तम रत्न कौस्तुभ प्रकट हुआ,

अमृतकी प्राप्तिके लिये देवताओं और दैत्योंने जब तदनन्तर जब पुनः समुद्र-मन्थन आरम्भ हुआ। तब आकर क्षीरसागरको पुनः मथने लगे। तब समुद्रसे कल्पवृक्ष, पारिजात, आम्र और सन्तान—ये चार दिव्य वृक्ष प्रकट हुए। उन सबको एकत्र रखकर देवताओंने

जो सूर्यमण्डलके समान परम कान्तिमान था। देवताओंने और स्वयं उनके वाम भागमें जाकर खुड़ी हो गयीं। Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha

अबकी बार उस मथे जाते हुए समुद्रसे उच्चै:श्रवा नामक अश्वरत्न प्रकट हुआ। उसके बाद गजजातिमें रत्नभूत ऐरावत प्रकट हुआ। उसके साथ श्वेतवर्णके चौंसठ हाथी और थे। इसके बाद पुन: मन्थन करनेपर समुद्रसे मदिरा, काकड़ासिंगी, लहसुन, गाजर, अत्यधिक उन्मादकारक धतूर तथा पुष्कर आदि बहुत-सी वस्तुएँ प्रकट हुईं। तत्पश्चात् वे श्रेष्ठ देवता और दानव पुन: पहलेकी ही भाँति समुद्र-मन्थन करने लगे। अबकी बार समुद्रसे सम्पूर्ण भुवनोंकी एकमात्र अधीश्वरी दिव्यरूपा देवी महालक्ष्मी प्रकट हुईं, जिन्हें ब्रह्मवेत्ता पुरुष आन्वीक्षिकी (विचार-विद्या) कहते हैं। इन्हें ही मूल-विद्या, वाणी, ब्रह्मविद्या, ऋद्भि, सिद्धि, आज्ञा, आशा, वैष्णवी, माया और भगवान्की 'योगमाया' भी कहते हैं। देवताओंने देखा, देवी महालक्ष्मीका रूप परम सुन्दर है। उनके मनोहर मुखपर स्वाभाविक प्रसन्नता विराजमान है। हार और नूप्रोंसे उनके श्रीअंगोंकी बड़ी शोभा हो रही है। मस्तकपर छत्र तना हुआ है, दोनों ओरसे चॅंवर डुल रहे हैं; जैसे माता अपने पुत्रोंकी ओर स्नेह और दुलारभरी दृष्टिसे देखती है, उसी प्रकार सती महालक्ष्मीने देवता, दानव, सिद्ध, चारण और नाग आदि सम्पूर्ण प्राणियोंकी ओर दृष्टिपात किया। माता महालक्ष्मीकी कृपा-दृष्टि पाकर सम्पूर्ण देवता उसी समय श्रीसम्पन्न हो गये और राज्याधिकारीके शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न दिखायी देने लगे। तदनन्तर देवी लक्ष्मीने भगवान् मुकुन्दकी ओर देखा। उनके श्रीअंग तमालके समान श्यामवर्ण थे। कपोल और नासिका बडी सुन्दर थी। वे परम मनोहर दिव्य शरीरसे प्रकाशित हो रहे थे। उनके वक्ष:स्थलमें श्रीवत्सका चिह्न सुशोभित था। भगवान्के एक हाथमें कौमोदकी गदा शोभा पा रही थी। भगवान् नारायणकी उस दिव्य शोभाको

देखते ही लक्ष्मीजी आश्चर्यचिकत हो उठीं और हाथमें

वनमाला ले सहसा हाथीसे उतर पडीं। देवीने वह सुन्दर

वनमाला परमपुरुष भगवान् विष्णुके कण्ठमें पहना दी

शरणागति और प्रेम संख्या ११] शरणागति और प्रेम (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) भगवानुकी शरणमें रहनेसे साधकको बडी शक्ति भगवन्नामकीर्तनकी ध्वनि पड जाती है तो वह प्रेममें मिलती है। फिर उसमें दुर्गुण-दुराचार रह ही नहीं सकते। विभोर हो जाता है। वह यदि किसी भगवद्रसिक जिस प्रकार सूर्यकी सन्निधिमें रहनेवालेके पास शीत और महापुरुषके दर्शन कर लेता है तो उसके नेत्र गुलाबके अन्धकार नहीं फटक सकते, उसी प्रकार जिसके हृदयमें फूलकी तरह खिल उठते हैं और उनसे झर-झर अश्रुपात श्रीभगवान् विराजमान हैं, उसके पास दुर्गुण नहीं आ होने लगता है। हमलोग तो प्रेमका केवल नाम लेते हैं, सकते। यही नहीं, जिस तरह सूर्यके आश्रयसे अनायास ही असली प्रेम तो दूसरी ही चीज है। वह सर्वथा अलौकिक गर्मी और प्रकाशका सुख प्राप्त होता है, वैसे ही भगवानुके और अनिर्वचनीय है। उसतक मन और वाणीकी पहुँच आश्रयसे भी स्वत: ही सद्गुण और सदाचारकी वृद्धि होने नहीं है। बुद्धि भी उसका स्पर्श तो करती है, परंतु पूरा-पूरा लगती है। भगवदाश्रयका सुदृढ़ निश्चय होनेपर ही ऐसा पता नहीं लगा सकती। होता है। ऐसे शरणागत भक्तको यदि कभी किसी दुर्गुणसे जो एक बार प्रेमसे घायल हो जाता है, उसपर कोई बाधा होगी भी तो उसके 'हे नाथ! हे नाथ!' ऐसा पुकारते भी औषध काम नहीं करती। हमलोगोंको निरन्तर प्रेमकी वृद्धि करनी चाहिये-यहाँतक कि उससे बाध्य होकर ही वह दुर्गुण दूर चला जायगा। यदि निर्भरताकी कमीके कारण कभी ऐसा जान पड़े कि हमारे हृदयमें कोई प्रभुको आना पड़े। प्रेमीको प्रभु त्याग नहीं सकते। प्रेमकी कुविचार प्रवेश करना चाहता है, तो हमें कातर स्वरमें 'हे लोग ठीक-ठीक कदर नहीं करते। प्रेमियोंकी बडी नाथ! हे नाथ!' इस प्रकार पुकारना चाहिये। प्रभुका आवश्यकता है। प्रेमी बहुत कम मिलते हैं — प्राय: मिलते आश्रय लेनेसे चिन्ता, भय, शोक एवं सब प्रकारके दुर्गुण-ही नहीं। सर्वस्व समर्पण करनेपर यदि एक रत्तीभर प्रेम दुराचार मूलसहित नष्ट हो जाते हैं तथा सद्गुण, सदाचार मिले तो सर्वस्व दे डालना चाहिये। सच्चा प्रेमी ऐसा ही एवं शान्ति आदिका स्वत: ही विकास होता है। करता है। रत्नका वास्तविक मूल्य जौहरी ही जानता है। इन सारे गुणोंकी प्राप्ति भगवच्छरणागतिसे हो यदि भीलनीके सामने एक लाख रुपयेका हीरा रखा जाय जाय-इसमें तो कहना ही क्या, ये सब तो भगवान्के तो वह उसके बदलेमें चार पैसे भी देना नहीं चाहेगी, प्रेमियोंके सहवाससे भी प्राप्त हो सकते हैं। जो पुरुष कहेगी कि यह काँचका टुकड़ा मेरे किस कामका। परंतु भगवत्कृपाके रहस्यको समझ जाता है, उसमें दया, जौहरी उसके लिये खुशी-खुशी अपना सर्वस्व दे डालेगा। इसी प्रकार प्रेमका मूल्य भी कोई विरले ही गम्भीरता, शान्ति और सरलता आदि सद्गुण स्वयं ही आ जाते हैं। उसके हृदयमें आनन्दका समुद्र उमड़ने लगता है जानते हैं। प्रेमके लिये जो जितना कम मूल्य देना चाहते हैं, वे प्रेमके तत्त्वको उतना ही कम जानते हैं, प्रेम तो तथा दृष्टिमें सर्वत्र समताका साम्राज्य छा जाता है। हमलोग भगवद्दर्शनके लिये बहुत उतावले रहते हैं; परंतु स्वार्थत्यागसे ही मिलता है। सच्चे प्रेमी सिरकी बाजी भगवान् कभी अपात्रको दर्शन नहीं देते। यदि हम पात्र लगाकर भी प्रभुका प्रेम प्राप्त करते हैं। होंगे तो हमारे सामने प्रभु आप ही प्रकट हो जायँगे। इसके प्रेमी लोग सर्वदा वही किया करते हैं, जिससे लिये अनन्य प्रेमकी आवश्यकता है। जो सच्चे प्रेमी होते भगवान्की प्रसन्नता हो। यदि उन्हें कोई भगवान्का प्यारा मिलता है तो उसके भजन-ध्यानादिमें सहायक होकर वे हैं, वे यदि कहीं भगवच्चर्चा या भगवन्नामकीर्तन सुनते हैं तो उनकी बडी विचित्र अवस्था हो जाती है। जैसे बदलेमें प्रभुकी प्रसन्तता प्राप्त करते हैं। जब दो प्रेमी कामिनीके नूप्रोंकी झनकार सुनकर कामी पुरुषके हृदयमें मिलते हैं तो एक अपूर्व आनन्दकी बाढ-सी आ जाती काम जाग्रत हो उठता है, वैसे ही यदि प्रेमीके कानोंमें है। ऐसे प्रेमसम्मेलनको देखकर प्रभु भी उनके हाथ बिक

भाग ९३ जाते हैं। जो उनकी छोटी-से-छोटी आज्ञाका पालन क्या है ? हमारे अन्दर प्रेम नहीं है। इसीसे वे खुशामद करनेके लिये अपने सर्वस्वको निछावर करनेको तैयार करनेपर भी नहीं आते। यदि प्रेम होता तो स्वयं वे ही हमारे रहते हैं, भगवान् उनके ऋणी हो जाते हैं। इस विषयमें पीछे-पीछे घूमते। इस विषयमें एक दृष्टान्त दिया जाता है। मान लीजिये कई मिलवाले मन्दे भावमें गन्ना खरीद अतिथिप्रेमी महाराज मयुरध्वजकी कथा प्रसिद्ध ही है। जिस समय ब्राह्मण बने हुए भगवानुकी आज्ञासे राजा रहे हैं। इसी समय कोई बुद्धिमान् धनी पुरुष सोचता है कि अपने शरीरको अपनी रानी और कुमारके द्वारा आरेसे यदि गन्नेके दाम बढ़ाकर इस प्रान्तका सारा गन्ना मैं खरीद चिरवाकर सिंहको देनेके लिये तैयार होते हैं, उस समय लूँ तो पीछे इनसे मनमाना दाम ले सकता हूँ। यह सोचकर उनकी यही भावना रहती है कि इस प्रकार सिंहकी तृप्ति वह गन्नेका खेला करता है। जिस समय उसके पास रुपयेमें चार आनेभर गन्ना था, मिलके मैनेजर उसके होनेसे ब्राह्मणदेवताकी तृप्ति होगी, और ब्राह्मणदेवताकी तृप्ति होनेसे भगवान् तृप्त होंगे। उनकी इतनी उदारता तो दलालसे बात भी नहीं करते थे। अब जब उसने सारा गन्ना अपने हाथमें कर लिया और मिलको उसकी जरूरत पड़ी छद्मवेषधारी भगवान्के लिये थी, यदि प्रभु अपने निजरूपसे उनके सामने आते तो न जाने वे क्या करते। तो साहबको चिन्ता हुई। दलाल भेजे गये तो उसने कह नामदेवजीके सामनेसे कुत्ता रोटी लेकर भागा तो वे उसके दिया अभी गन्ना बेचना नहीं है। साहबने स्वयं मिलनेके पीछे घी लेकर चले कि 'भगवन्! अभी रोटी सूखी है, विषयमें पुछवाया तो कह दिया 'अभी बेचनेकी गरज नहीं है, जब गरज होगी तब मिल लेंगे।' साहब बिना बुलाये इसे चुपड़ देने दीजिये।' इस प्रकारकी भगवन्निष्ठा भगवान्को बलपूर्वक अपना ऋणी बना लेती है। स्वयं ही आये तो उन्हें बाहर ठहराकर भोजनादिसे निवृत्त गोपियोंके विचित्र प्रेमकी बात सबपर प्रकट ही है। होनेपर मिले। साहब पूछते हैं, 'सेठजी, ऐसा क्या अपराध उद्भवजी श्यामसुन्दरका सन्देश लेकर आते हैं, उन्हें तरह-हुआ ? आप तो बात करनेका भी मौका नहीं देते ?' तो तरहसे उपदेश देकर धैर्य बँधानेका प्रयत्न करते हैं। परंतु सेठजी कहते हैं, 'सब समयकी बात है। आपके पास कितनी बार दलाल भेजते थे, किंतु आप बात भी नहीं अन्तमें उनका अद्भुत प्रेमोन्माद देखकर स्वयं भी उन्हींके करते थे; अब आपको स्वयं ही आना पड़ा। गन्ना तो चरणिकंकर होनेकी कामना करने लगते हैं। अहा! अपने आपका ही है, आपको जितना चाहिये ले जाइये।' हमारे प्यारेकी यादमें कितनी मिठास है ? कोई पुरुष प्यारेका पत्र लेकर आता है तो हम उतावले हो जाते हैं, पहले उससे भगवान् भी ऐसे ही मिजाजी हैं। वे साधारण स्तुति-प्रार्थनासे काबूमें आनेवाले नहीं हैं। उन्हें तो प्रेमकी प्यास पूछते हैं 'क्यों जी, क्या तुम उससे मिले थे ?' उसके 'हाँ' कहनेपर हम आनन्दमग्न हो जाते हैं। फिर पूछते हैं, 'कुछ है। हमलोग यदि प्रेमका संग्रह कर लें तो उन्हें विवश मेरी भी बात हुई थी ?'वह स्वीकार करता है तो हम उछलने होकर आना पड़ेगा। अत: जिस भावमें भी मिले, उसी भावमें प्रेम खरीदो। यदि हमारे पास प्रेमका संग्रह होगा तो लगते हैं। फिर कहते हैं, 'क्या कुछ भेजा है ?' वह कहता है, 'हाँ, पत्र भेजा है' तो इतना आनन्द होता है कि पत्रको भगवान्का सब मिजाज ढीला पड़ जायगा। प्रेमके बिना लेकर स्वयं पढ़नेकी भी सामर्थ्य नहीं रहती। पत्रके ऊपर भगवान्का काम नहीं चलता, उनके सब कल-कारखाने प्यारेके हाथका लिखा हुआ सिरनामा देखकर हृदयमें अपूर्व बन्द हो जाते हैं। भगवान्का नाम ही प्रेम खरीदनेकी पूँजी आनन्द छा जाता है। यह सब लौकिक प्रेमकी बात है। ऐसा है। इसलिये निरन्तर नाम-जपका अभ्यास करना चाहिये। संसारमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो प्रेमके बदले न ही प्रेम जब प्रभुके चरणोंमें हो तो क्या कहना है ?' महात्माओंसे सुना है 'भगवान् प्रेमीके अधीन हो दी जा सके। तन, मन, धन, प्राण—सभी इसपर निछावर किये जा सकते हैं। प्रह्लादको देखिये। उन्हें न राज्यकी जाते हैं।' किंतु आज हमारी क्या दशा है? हम जगह-जगह जाते हैं, भगवान्की स्तुति और प्रार्थनादि भी करते परवा है, न प्राणोंकी। उन्हें तरह-तरहके कष्ट दिये जाते हैं; परंतु वे मिजाज किये बैठे हैं, आते ही नहीं। कारण हैं—बार-बार मार पडती है, पर्वतशिखरसे गिराया जाता

संख्या ११] शरणागित	। और प्रेम ९
<u></u>	
है, साँपोंसे डसाया जाता है, हाथियोंसे खुँदवाया जाता है,	जो स्वादके लोभमें पड़कर पहले स्वयं खाता है, वह
अग्निमें गिराया जाता है, तो भी वे अपनी टेक नहीं	अमृतके भ्रमसे विष-सेवन करता है। बलिवैश्वदेवका भी
छोड़ते—प्राणोंकी बाजी लगाकर भी भगवत्प्रेमकी रक्षा	यही रहस्य है। ऐसा ही नियम साधु-संन्यासियोंके लिये
करते हैं। आखिर भगवान् प्रकट होते हैं और आनेमें	भी है। जब रसोईघरका धुआँ बन्द हो जाय, उस समय
विलम्ब हुआ, इसके लिये प्रह्लादसे क्षमा माँगते हैं। जिस	उन्हें भिक्षाके लिये जाना चाहिये, जिससे कि उनके निमित्तसे
समय ब्राह्मणवेषधारी भगवान्ने अपने सिंहके लिये मयूरध्वजसे	गृहस्थको अलग भोजन न बनाना पड़े। उस समय भी यदि
उसका शरीर माँगा तो राजा बड़े हर्षसे कहता है, 'महाराज!	किसी द्वारपर पहलेसे दूसरा भिखारी खड़ा हो तो वहाँ न
आप कोई चिन्ता न करें, मैं प्रसन्नतापूर्वक यह शरीर	जाय। ऐसा न हो कि दोनोंको देनेसे फिर गृहस्थके लिये
बाघको देनेको तैयार हूँ। यह बाघ तो साक्षात् नारायणका	अन्नकी कमी हो जाय। इन सब नियमोंमें शास्त्रका लक्ष्य
स्वरूप है। इनकी सेवाका सौभाग्य फिर कब प्राप्त होगा?'	क्या है? उसपर विचार करना चाहिये। इन सभीमें
देखिये, कैसी ऊँची दृष्टि है! शरीरकी भिक्षा माँगनेवालेमें	स्वार्थत्यागकी भावना भरी हुई है। यदि कोई चीज बाँटकर
भी राजाको साक्षात् श्रीहरिकी ही झाँकी होती है। भगवान्	खानी हो तो उसमें भी अपने लिये अधिक रखनेकी प्रवृत्ति
ऐसे प्रेमियोंके ऋणसे किस प्रकार उऋण हो सकते हैं?	नहीं होनी चाहिये। बहुत-से लोग मुखसे तो कहते रहते हैं
हमें तो प्रभुकी प्राप्तिके लिये घरसे कुछ भी नहीं देना	कि हमारा कुछ नहीं है, सब भगवान्का है, परंतु चित्तसे
पड़ता। भगवान्की ही चीजें उनको भेंट कर देनी हैं। इसमें	एक-एक तिनकेको पकड़े रहते हैं। यह कहनेका त्याग
हमारा क्या लगता है ? यह धन-ऐश्वर्य विचारवानोंकी	भी अच्छा है, परंतु वास्तविक लाभ तो सच्चे त्यागसे ही
दृष्टिमें कोई ऊँची चीज नहीं है। इसके तो त्यागमें ही सुख	होता है। इस प्रकार कहनेवालोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ तो वे ही
है। इसमें ममता करना तो अपनेको व्यर्थके बन्धनमें डालना	हैं, जो समय पड़नेपर अपना सर्वस्व प्रभुके लिये निछावर
ही है। कोई भी विवेकी पुरुष इसके मोहमें नहीं फँसते।	करनेको तैयार रहते हैं। जो सच्चे दानी होते हैं, उन्हें तो
हमारे प्रान्त (राजपूताने)-में एक बड़े अच्छे महात्मा थे।	दान देनेका कोई अभिमान ही नहीं होता। कहते हैं, किसी
एक बार एक भक्त उनके लिये आसामसे एक अण्डी	दानीके दानकी प्रशंसा की गयी तो वह रोने लगा। उससे
(रेशमकी चद्दर) गेरुआ रँगवाकर ले गये। एक दिन वे	रोनेका कारण पूछा गया तो वह बोला—'धन उसका,
उसे ओढ़े हुए बैठे थे कि एक पण्डितजी बोल उठे—	देनेवाला वह, मैं तो केवल निमित्तमात्र हूँ। लोग मुझे दानी
'बाबाजी! यह अण्डी तो बहुत बढ़िया है।'बाबाजीने उसे	कहते हैं, भला मैं उसके सामने क्या मुँह दिखाऊँगा ?'
उसी समय उतारकर पण्डितजीको दे दिया। वे बोले—	अत: यदि भगवत्प्राप्तिकी इच्छा है तो वास्तविक
'बढ़िया चीज हम साधुओंके कामकी नहीं होती। तुम्हारी	त्याग कीजिये। हृदयसे अपना सर्वस्व प्रभुको समिझये।
इसमें प्रीति है, इसलिये अब इसे तुम्हीं रखो। जिस वस्तुमें	प्रभुके लिये ही सारे काम कीजिये। ममता, अहंता और
दूसरेका राग हो, उसे साधुको नहीं रखना चाहिये।'	आसक्तिको जड़से उखाड़ डालिये। इस प्रकार यदि आपकी
गृहस्थाश्रममें भी अपने सुखकी दृष्टिसे किसी वस्तुका	सारी चेष्टाएँ प्रभुके ही लिये होंगी और आप अपने तन,
सेवन करना उचित नहीं है। यदि किसी चीजको चार	मन, धन सबकी सार्थकता प्रभुकी प्रसन्नतामें ही समझेंगे,
आदमी खरीद रहे हों तो रुपयेवालेको बीचमें पड़कर उसे	प्रभुकी प्रसन्नताके लिये उनके त्यागमें तनिक भी संकोच
स्वयं नहीं खरीदना चाहिये। घरमें पाँच फल आयें तो	नहीं करेंगे तो प्रभुको विवश होकर आपकी खुशामद
पहले अतिथि-अभ्यागत और घरके अन्य व्यक्तियोंको	करनी होगी। ऐसी बात होनेपर भी आपको तो प्रभुकी ही
खिलाकर पीछे गृहस्वामीको खाना चाहिये और उसके	प्रसन्नतामें प्रसन्न रहना चाहिये, उनसे अपनी खुशामद
बाद गृहस्वामिनीको। यही यज्ञशिष्ट है। यह अमृत है।	करानेकी इच्छा रखना भी एक प्रकारका स्वार्थ ही है।
	>+>

िभाग ९३ करने-न करनेका अभिमान छोड़ दो (ब्रह्मलीन स्वामी श्रीअखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज) बीसवीं शताब्दीकी घटना है। एक बडे शहरमें किये बिना इसके दु:खोंका ज्ञान नहीं होता। तुम अभी एक बडे प्रतिष्ठित धनी निवास करते थे। उनके चित्तमें नवयुवक हो। तुम कुछ दिनोंतक संसारके व्यवहारोंमें रहकर इसके सुख-दु:खोंको देख लो, फिर तुम्हारी रुचि बडा वैराग्य था, भगवानुके भजनमें बडी रुचि थी। वे सोचते रहते थे कि कब वह अवसर मिलेगा, जब सबकी हो तो भजनमें लग जाना।' चिन्ता छोड़कर मैं भजनमें ही लग जाऊँगा। उनके भतीजा—'चाचाजी! आपकी बात मुझे जँचती नहीं है। मैं सोचता हूँ कि जिस व्यापार आदिमें लगे सन्तान नहीं थी। एक भतीजा था, जिसके पढाने-लिखानेकी जिम्मेदारी सेठजीपर ही थी। वे उसको योग्य रहकर आपने अपनी इतनी उम्र बितायी है, उसका अनुभव आपसे अधिक मुझे कब होगा! जब आपका बनाकर भजनमें लगना चाहते थे। अनुभव इतना प्रत्यक्ष है, मेरी आँखोंके सामने है, तब कुछ दिनोंमें पढ़-लिखकर सेठजीका भतीजा योग्य हो गया। सेठजीने व्यापारका सारा काम-काज उसे फिर उसका अनुभव प्राप्त करनेके लिये इतना सुखद भजन छोड देना कहाँतक उचित है? इसलिये मैं भजनके सँभला दिया और अपना विचार प्रकट किया कि मैं तो लिये अवश्य चलूँगा। आप साथ न रखेंगे तो मैं अकेला अब व्रजमें रहकर भगवान्का ही भजन करूँगा। भतीजेने पूछा—'चाचाजी, इस घरमें, व्यापारमें, ही चला जाऊँगा।' रुपयेमें और भोगोंमें जो आनन्द है, भजनमें उससे भतीजेका दृढ़ निश्चय देखकर सेठजीको प्रसन्नता अधिक आनन्द है क्या?' हुई। अपनी सारी सम्पत्तिका उन्होंने ट्रस्ट बना दिया, चाचाजी—'इसमें क्या सन्देह है, बेटा! हमारा जिससे दीन-दुखियोंकी सेवा हुआ करे। दोनोंने समस्त व्यापार, भोग और सुख तो अत्यन्त अल्प है। संसारके वस्तुओंका त्याग करके व्रजकी यात्रा की। रास्तेमें त्रैकालिक सुखोंको और मोक्ष-सुखको भी यदि एकत्र चाचाजीने अपने भतीजेसे बातचीत करते हुए कहा-करके एक पलड़ेपर रखा जाय और दूसरे पलड़ेपर 'बेटा! ऐसी बात नहीं है कि घरमें भगवानुका भजन हो ही नहीं सकता; हो तो सकता है, होता है। मेरे सामने

भजनका लेशमात्र सुख रखा जाय, तो भी वह लेशमात्र सुख ही अधिक होगा। और तो क्या कहूँ, बेटा? भजनमें जो दु:ख होता है, वह भी संसारके सब सुखोंसे श्रेष्ठ है।' भतीजा—'चाचाजी! जब भजनमें इतना सुख है,

तब मुझे इस दु:खरूप व्यापारमें लगाकर आप अकेले क्यों उस सुखका उपभोग करने जा रहे हैं? जिसे आप दु:ख समझते हैं, उसमें मुझे डाल रहे हैं और आप

पड़ता है। इसलिये कैसा भी सज्जन क्यों न हो, सुखमें जा रहे हैं, भला, यह कहाँका न्याय है? मैं भी व्यवहारके क्षेत्रमें उसे विवश होकर अपराध करना पडता है। सम्भव है दो-एक इसके अपवाद भी हों।

संसारके व्यवहार, व्यापारमें बहुत बड़ी कठिनाई थी।

आजकल व्यापारकी प्रणाली इतनी कलुषित, इतनी गन्दी

हो गयी है कि बड़े-बड़े सत्पुरुषोंका व्यवहार भी पूर्णत:

शुद्ध नहीं होता। जहाँ दूसरोंसे सम्बन्ध रखना पड़ता है,

वहाँ कुछ-न-कुछ उनके सम्बन्धका ध्यान रखना ही

आपके साथ चलुँगा।' चाचाजी—'बेटा! मैं तो चाहता हूँ कि संसारके परंतु है यह बहुत कठिन। अवश्य ही यह व्यापारका सभी लोग भगवान्में लग जायँ। मुझे कई बार इस दोष नहीं है, किंतु कलियुगमें ऐसे व्यक्तियोंकी ही भरमार है। इसीसे जो लोग अपने ईमान और सच्चाईकी रक्षा बातका दु:ख भी होता है कि लोग ऐसा सुखमय भजन

संख्या ११] करने-न करनेक	अभिमान छोड़ दो ११
\$	**************************************
हैं; वे थोड़े-से-थोड़ा व्यापार करते हैं अथवा उससे	और खुद भी खाते। जिसको छोड़ दिया, उसकी फिर क्या
बिलकुल अलग होकर भजन करने लग जाते हैं। भजन	इच्छा ? जिसको उगल दिया, उसको फिर खाना—यह तो
ही सर्वस्व है, भजन ही जीवन है। भजनके आनन्दके	कुत्तोंका काम है।' चाचाजी, आपने सनातन गोस्वामीकी
सामने त्रिलोकी तुच्छ है।'	बात तो सुनी ही होगी। इतने विरक्त थे वे कि अपने
दोनों ही चाचा और भतीजे व्रजमें रहकर भजन	ठाकुरको भी बाजरेकी सूखी रोटी खिलाते थे। एक दिन
करने लगे। सत्संग करते, लीला देखते, जप करते, ध्यान	ठाकुरजीने उनसे कहा—'भाई! कम–से–कम नमक तो
करते और व्रजकी रजमें लोटते। दोनों अलग-अलग	खिलाया करो। सूखी रोटी मेरे मुँहमें गड़ती है।' भगवान्की
विचरण करते, अलग-अलग भिक्षा करते और रातको	यह बात सुनकर श्रीसनातन गोस्वामीको बड़ा दु:ख हुआ।
दूर-दूर रहते। कुछ दिनोंके बाद तो सत्संग करते-करते	उन्होंने कहा—'मेरे चित्तमें स्वादकी वासना होगी, तभी
उनकी बुद्धि इतनी शुद्ध हो गयी कि एकको दूसरेकी	तुम ऐसा कह रहे हो। अन्यथा तुम्हें नमककी क्या
याद ही नहीं रहती। कोई कहीं रहकर भजन कर रहा	आवश्यकता है ?' सनातन गोस्वामीकी बात स्मरण करके
है, कोई कहीं। दोनों मस्त थे।	हमें तो अपनी दशापर बड़ा दु:ख हो रहा है। अभी
एक दिन बड़ी विचित्र घटना घटित हो गयी, सेठजी	भोगोंकी आसक्ति हमारे चित्तसे मिटी नहीं। इसीसे तरह-
जप कर रहे थे। उनके मनमें बार-बार खीर खानेकी इच्छा	तरहके बहाने बनाकर और प्रत्यक्ष भी हम भोग चाहते हैं।
होने लगी। एक तो यों ही मनुष्यकी इच्छाएँ उसके साथ	न जाने भगवान्की क्या इच्छा है।' भतीजा बोल रहा था
जुड़ी रहती हैं; दूसरे भजनके समयकी इच्छा तो	और सेठजीकी आँखोंसे आँसू गिर रहे थे। 'यह भी
कल्पवृक्षके नीचे बैठकर की हुई इच्छाके समान है।	भगवान्की कृपा ही होगी' इतना कहकर वह ध्यानमग्न
भगवान् अपने भक्तको प्रत्येक इच्छा उचित समझकर पूर्ण	हो गया।
करते हैं। थोड़ी ही देरमें एक बारह वर्षकी सीधी-सादी	थोड़ी देरमें वही लड़की, जो खीरका सामान दे
लड़की वहाँ आयी और सेठजीके सामने दूध, चावल और	गयी थी, आयी। वह कहने लगी—'बाबा! तुम रोते क्यों
चीनी रख गयी। सेठजीको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे	हो ? अबतक तुमने खीर भी नहीं खायी है ? ऐसा क्यों ?
भगवान्की भक्तवत्सलता देखकर मुग्ध तो हुए, परंतु	क्या मेरा कोई अपराध था? उस लड़कीकी मधुर वाणी
उनकी खीर खानेकी इच्छा अभी मिटी नहीं थी। उन्होंने	सुनकर दोनोंने आँखें खोलीं तो वह लड़की साधारण
आग जलाकर खीर पकाना शुरू किया। अब उनके मनमें	नहीं, ज्योतिर्मयी साक्षात् श्रीजी थीं। दोनोंने साष्टांग
भतीजेकी याद आने लगी। वे सोचने लगे कि यदि वह भी	दण्डवत् करते-न-करते सुना कि श्रीजी कह रही हैं 'यह
आ जाता, तो उसे भी खीर मिल जाती। चाचाके स्मरणका	सब मेरी ही लीला थी। यह व्रजभूमि मेरी भूमि है। यहाँ
प्रभाव भतीजेके चित्तपर पड़ा और वह अपने स्थानसे	रहकर तुम करने–न करनेका अभिमान छोड़ दो। तुम
चलकर सेठजीके पास पहुँचा।	कुछ करते नहीं, कर सकते नहीं। सब मैं करती हूँ।
भतीजेकी स्थिति बहुत ऊँची थी, उसमें आत्मबल	जबतक तुम अपनेको एक भी क्रिया या संकल्पका कर्ता
था। तभी तो वह एक ही दिनमें अपनी सारी सम्पत्ति छोड़	मानोगे, तबतक तुम्हें दुःख होगा। जैसे मैं रखूँ, वैसे रहो।
सका था। खीरकी तैयारी देखकर उसने चाचाजीसे सब	जो कराती हूँ, सो करो। तुम मेरे हो।'
बात पूछी और उदास हो गया। उसने कहा—'चाचाजी!	दण्डवत् करके जब उन दोनोंने आँखें खोलीं, तब
यदि खीर ही खानी थी, तो घर क्यों छोड़ा? वहीं रहकर	वहाँसे श्रीजी अन्तर्धान हो चुकी थीं। वे चाचा-भतीजा
जो कुछ बनता भजन करते, दूसरोंको खीर-पूड़ी खिलाते	जीवनभर मस्त देखे गये।
— →	>+

ईश्वर-चर्चा (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) भगवानुके विषयमें भ्रम और शंका तो भगवानु ही शक्ति या प्रेरणा ही काम करती है। दूर करते हैं। उनकी कृपाके प्रकाशसे जब मिथ्या-कुछ लोग कहते हैं कि अच्छा-बुरा, पाप-पुण्य सब ईश्वर ही कराता है, वास्तवमें यह आधा ही सत्य तर्कका अन्धकार मिट जाता है और ज्ञानका आलोक उदय होता है, तब भ्रम और अज्ञानका तिमिर अपने-है। पुण्य ईश्वर कराता है, यह तो समझमें आनेकी बात

है; क्योंकि ईश्वर पुण्यमय है। जो जैसा होता है, उससे उसीकी प्रेरणा मिलती है; परंतु ईश्वर बुरा या पाप भी

आप हट जाता है।

एक बात और ध्यान देनेयोग्य है। जहाँतक प्रत्यक्ष प्रमाणकी गति है, वहींतक मनुष्य साधिकार कोई बात कह सकता है। जहाँ इन्द्रिय, मन, बुद्धिकी भी पहुँच नहीं हो पाती,

उस तत्त्वका निर्णय मनुष्य निरे तर्क और युक्तिके बलपर नहीं कर सकता। उसके लिये शास्त्र और अनुभवी संतकी शरणमें जानेकी आवश्यकता होती है। भगवान् भी यही कहते हैं—

उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः। (श्रीमद्भगवद्गीता)

जिसने शम, दम आदि साधनोंका अनुष्ठान किया है, सद्गुरुकी सेवा की है, सत्संगका दीर्घकालतक सेवन किया है, शास्त्रोंका अनुशीलन और एकाग्रतापूर्वक

भगवानुकी आराधना की है, वही भगवत्कृपासे यथार्थ तत्त्वका अनुभव करके कह सकता है कि कौन भ्रममें है और कौन नहीं ? शेष सब लोग तो स्वयं सन्देह और भ्रममें ही रहते हैं। फिर भी इस भ्रम-निवारणके यही सब

उपाय हैं। परस्पर समझना-समझाना और सन्देह हो तो उसे श्रेष्ठ पुरुषोंसे पूछकर निवृत्त कर लेना—इसीसे तत्त्वका बोध हुआ करता है—'वादे वादे जायते तत्त्वबोधः' यह प्रसिद्ध है।

वस्तृत: सत्य तो यह है कि ईश्वरकी आज्ञाके बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। जैसे विद्युत्-शक्तिके बिना मशीन नहीं चल पाती, उसी प्रकार ईश्वरीय सत्ता

एवं प्रेरणाके बिना जगत्का एक अणु भी कार्य-क्षम नहीं हो सकता। हम तभी किसीको देखते हैं, जब आँख काम

पत्ता भी हिलता है तो उसके हलन-चलनमें ईश्वरकी

करती है। नेत्रमें जो देखनेकी शक्ति है, वह किसकी है?

ईश्वरकी ही है; इसीलिये शास्त्र उसे 'चक्षुषश्चक्षुः'

(नेत्रका भी नेत्र) कहते हैं। इसलिये संसारमें यदि एक

भावकी अशुद्धिसे दूसरेकी वही चेष्टा पाप है। चेष्टामें ईश्वरीय शक्ति काम करती है और उसी चेष्टाको पुण्य एवं पापमय बनानेमें मनुष्यका आन्तरिक भाव काम करता है। ईश्वर पुण्यमय हैं, अत: सर्वत्र ईश्वर-दर्शन

करनेवाला पुण्यात्मा है और धर्मविरुद्ध 'काम' पापरूप

भाग ९३

कराता है, यह किसी भी विचारशीलको मान्य नहीं हो

सकता। सूर्यकी किरणें प्रकाश फैलाती हैं-यह तो सबके विश्वासकी बात है, परंतु सूर्य उगनेपर अन्धकार

बढ़ जाता है-यह सम्भवत: कोई भी माननेको तैयार

नहीं होगा। अग्नि शीतल और चन्द्रमा उष्ण है-यह

उन्मत्त प्रलाप है। जिसका नाम, रूप, लीला, धाम—सब

हिलता, तब पाप कैसे हो सकता है? इसका उत्तर यह

है कि हलन-चलन आदि चेष्टाएँ ईश्वरीय शक्तिसे होती

हैं। पापीके शरीर और इन्द्रिय भी ईश्वर-शक्तिसे ही

हिलते या चेष्टा करते हैं तथा पुण्यात्माके शरीर एवं

इन्द्रिय भी ईश्वरशक्तिसे ही अपने कार्यमें समर्थ होते हैं।

यह चेष्टामात्र ही ईश्वरीय-शक्तिसे होती है। एक ही

प्रकारकी चेष्टा दो मनुष्य करते हैं; एककी चेष्टा पाप बन जाती है और दूसरेकी पुण्य। पापी और पुण्यात्मा

दोनों अपने नेत्रोंसे देखते हैं; परंतु एककी दृष्टि शुद्ध है,

वह सबमें सर्वत्र भगवानुका भाव रखकर देखता है। और

दुसरा रूप, लावण्य, कटाक्ष और हाव-भावपर गन्दी

दृष्टि रखकर परस्त्रीका सतीत्व लूटना चाहता है। भाव-

शुद्धिके कारण पहलेकी दर्शनरूप चेष्टा पुण्य है और

है, अत: उसमें आसक्त होनेवाला पापात्मा है। इसी

यदि कहें उसकी इच्छाके बिना पत्ता भी नहीं

कुछ पुण्यमय है, वह पाप क्यों करायेगा?

संख्या ११] र्इश्वर-चर्चा प्रकार प्रत्येक चेष्टामें हम पाप-पुण्यका निर्णय कर बहुमूल्य वस्तुएँ पसन्द कीं। रुपये कम होनेके कारण वह खरीद न सका। परंतु कामनावश लोभ हुआ और लोभवश सकते हैं। चेष्टा भगवान् कराते हैं और पाप-पुण्य मनुष्य करता है। भगवान्ने अर्जुनके यह पूछनेपर कि 'पाप वह किसी मनचाही वस्तुको चुरा लेनेको तैयार हो गया। कौन कराता है ' स्पष्ट उत्तर दिया है कि 'महापापी काम अन्तमें वह चोरीमें पकड़ा गया और मार-पीटकर जेलमें ही पापमें कारण होता है।' अत: यह भी ठीक है कि बन्द कर दिया गया। दूसरा अपने नेक व्यवहारसे घर ईश्वरीय शक्ति या प्रेरणाके बिना एक पत्ता भी नहीं और बाहर सर्वत्र आदरका पात्र हुआ। दोनोंकी जो दो गतियाँ हुईं, इसमें उनके अपने ही कर्म कारण बने। हिलता, इसी प्रकार यह भी परम सत्य है कि ईश्वर पिताने एकको साधु और दूसरेको चोर नहीं बनाया था। सत्कर्ममें सहायक होता है, पाप-कर्म तो मनुष्य अपनी कामना एवं आसक्तिसे करता है। उसमें ईश्वरका हाथ 'जीव भी कोई चीज नहीं।' यह कहना भी सर्वथा भ्रम है। 'मैं हूँ' इसके लिये बाहरसे कोई प्रमाण देनेकी नहीं है। इसीलिये अच्छे-बुरे कर्मका दण्ड मिलता है। चोरको चोरीकी सजा क्यों मिलती है, इसलिये कि वह आवश्यकता नहीं होती। अपनी सत्ताका सबको प्रत्यक्ष पाप करता है। चोर एक जगहका माल उठाकर दूसरी अनुभव होता है। संसारमें जड़ और चेतन दो ही वस्तुएँ जगह रखता है; साधु भी यही करता है। परंतु एक चोर देखी जाती हैं। सर्वव्यापी परमात्मा प्रत्येक शरीरमें जीवरूपसे निवास करता है। जीव ईश्वरका ही अंश है। है, दूसरा साधु। चोर दूसरेकी चीजपर हाथ लगाकर अनिधकार चेष्टा करता है और साधु पुरुष अपनी चीज भगवान् स्वयं गीतामें कहते हैं— उठाता एवं रखता है। एकको छिपना पड़ता है, दूसरा ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः। सबके सामने रहता है। जैसे लोकमें भले-बुरे कर्मका गोस्वामी तुलसीदासजीने भी श्रीरामचरितमानसमें पुरस्कार या दण्ड मिलता है, उसी प्रकार परलोकमें इस प्रकार अंकित किया है—'ईस्वर अंस जीव समझना चाहिये। इसीलिये नरक और स्वर्गकी बात भी अबिनासी।' वेदभगवानुका यही उपदेश है—'द्वा सुपर्णा सयुजा॰' इत्यादि। अर्थात् ईश्वर और जीव दो पक्षी सत्य है। जैसे यहाँ हवालात, जेल और फाँसीघर हैं, उसी प्रकार परलोकमें भी यातनागृह हैं। इस सत्यकी उपादान कारण ईश्वर है और निमित्त कारण जीव ओरसे आँख नहीं मूँदना चाहिये। भगवान्ने सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि की है। उसमें कोई है, ऐसा मानना ठीक नहीं है। साधारणत: पांचभौतिक राजा, रईस, सेठ, साहुकार, उच्च और महान् तो कोई जड वस्तुओंका उपादान प्रकृति है; परंतु वह भी सर्वरूप निर्धन, दीन, हीन, दुखी, कंगाल, नीच और छोटा है। परमात्मासे भिन्न नहीं है। अत: एकमात्र परमात्मा ही ऐसी विषमता क्यों ? क्या ईश्वर अन्यायी या पक्षपाती है, जगत्के अभिन्न-निमित्तोपादान कारण हैं। वे ही उपादान जो सबको एक-सा नहीं बनाता? ईश्वर समदर्शी और कारण हैं और वे ही निमित्त। घटकी उत्पत्तिमें मृत्तिका न्यायकारी है। वह अपनी ओरसे सबको समान सुविधा उपादान है और कुम्भकार निमित्त। परंतु मकड़ी जो देता है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश आदि जाला बनाती है, उसमें वही निमित्त है और वही उसने सबके लिये बनाये हैं। विषमता मनुष्यने स्वयं पैदा उपादान। इसी प्रकार परमात्मा ही निमित्त कारण हैं और कर ली है। अपने कर्मके अनुसार कोई सुखी है और वही उपादान; क्योंकि उनसे भिन्न कोई वस्तु है ही नहीं। कोई दुखी है। कोई निरोग है तो कोई दीर्घकालतक रोगी श्रीभगवान् कहते हैं— रहता है। एक पिताने अपने दो पुत्रोंको पाँच-पाँच रुपये मत्तः परतरं नान्यत् किंचिदस्ति धनंजय। देकर बाजार भेजा और कहा—'इन रुपयोंसे तुम अपने (गीता ७।७) अर्थात् हे 'अर्जुन! मेरे अतिरिक्त अन्य कुछ भी मनकी चीज खरीद लेना। दोनों गये। एकने जितने पैसे थे, उसके अनुरूप सामान खरीदा। दूसरेने बाजारकी नहीं है।'

नाम-स्मरण (समर्थ सद्गुरु श्रीब्रह्मचैतन्यजी महाराज गोंदवलेकर)

धर दिया और पूछा—'तुम्हारे इस प्रतिबिम्बके जोड़में

नाम-स्मरणसे अपने अवगुण समझमें आयेंगे संसारमें परमार्थ पानेके लिये चाहे जितने साधन लडकी कैसी लगेगी?' तब कहीं उसे अपना और होंगे, लेकिन उन सभी साधनोंमें पहला कदम अपने

अवगुणोंको पहचानना है। जैसे-जैसे हमारा साधन

बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे हमें अपने भीतरके अवगुण दिखायी देने लगते हैं। आगे चलकर उन अवगुणोंका

इतना बड़ा पहाड़ खड़ा हो जाता है कि हमें लगता है, हे भगवान्! जब मैं इतने अवगुणोंसे भरा हुआ हूँ तो मुझे

तुम्हारे दर्शन हों, यह इच्छा भी मैं कैसे करूँ? इतने पहाड़-जैसी अवगुणोंकी राशिमेंसे मुझे तुम्हारे दर्शन हों,

क्या यह त्रिकालमें भी सम्भव है ? साधन शुरू करनेके पहले क्रोधी मनुष्य कभी अपने क्रोधके लिये लिजत नहीं होता था, बल्कि वह तो यह भी नहीं जानता था

कि क्रोध करना अवगुण है। वह तो कहता था कि 'व्यवहारमें रोब जमानेके लिये इतना क्रोध तो आवश्यक है; इसके बिना कैसे चलेगा? एक साधकने मुझसे कहा—'इन दिनों मुझे गुस्सा आने लगा है।' लेकिन सच बात तो यह थी गुस्सा अब नहीं आने लगा था,

गुस्सा तो उसे पहलेसे ही आता था। लेकिन साधन प्रारम्भ करनेके बाद उसे उसका भान होने लगा था। या यों कहिये कि गुस्सा नहीं करना चाहिये, गुस्सा बुरा

होता है, यह उसकी समझमें आने लगा था। विवाहयोग्य अवस्थावाला एक लड्का था, उसने कई लड़िकयाँ देखीं, लेकिन एक भी लड़की पसन्द नहीं

आयी। उसके माँ-बापने उससे कहा—'तुम्हें जब लड़की पसन्द आयेगी, तब हम आगेकी बातें करेंगे। वे

लडकी देखनेके लिये उसके साथ नहीं जाते थे। उस लड़केकी एक बड़ी बहन थी, वह लड़की देखनेके लिये जाते वक्त भाईके साथ जाती थी। एक बार लड़की

देखकर आनेके बाद बहनने उससे पूछा—'कैसी थी

लड़की?' इसपर वह बोला—'पसन्द नहीं आयी।'

लड़कीका रूप ध्यानमें आया। तब वह बोला-'लड़की सुन्दर है, बहुत अच्छी है। 'मतलब यह कि जबतक हमें अपने खुदके सच्चे दर्शन नहीं होते, तबतक हमें दूसरोंके

अवगुण ही दिखायी देते हैं। हमें दूसरोंमें जो अवगुण दिखायी देते हैं, उनके बीज हममें ही होते हैं, यह बात हमारे ध्यानमें आनी चाहिये और इसलिये हमें पहले दूसरोंके अवगुण देखनेकी वृत्ति छोड़नी चाहिये। दूसरोंके

अवगुण देखना हमेशाका व्यवहार है, परमार्थ नहीं है। जो सच्चा परमार्थी होता है, वह आत्म-परीक्षा करता रहता है। उसे दूसरोंके अवगुण दिखायी नहीं देते; क्योंकि उसे अपने अवगुणोंके ही इतने दर्शन होते रहते

हैं कि उसकी तुलनामें सब लोग उसे परमेश्वरके समान ही लगते हैं और ऐसा लगना ही सच्चा परमार्थ है। भगवानुके नाममें वासनाका क्षय निहित है। हम सब जीव वासनामें उलझे हुए हैं; क्योंकि

हमारा जन्म ही वासनासे हुआ है। वासनाका मतलब है, 'जो है, वह तो रहे और अधिकाधिक मिलता रहे।' हम अभी ऐसी स्थितिमें हैं। लेकिन प्रारम्भ करना है, इसलिये हम ऐसा कहें कि, 'जो है वह तो रहे और जो अधिक

माँगना है, वह परमेश्वरसे माँगे।' इसका परिणाम यह होगा कि जो मिला है, वह परमेश्वरने दिया है और अगर नहीं मिला तो ईश्वरकी इच्छा नहीं है, ऐसी समझ

िभाग ९३

बढ़ती रहेगी, और दाता परमात्मा है यह भावना भी वृद्धिंगत होगी। जो है वह भी उसकी इच्छाका फल है, ऐसी समझदारी बढकर आसक्ति और बेचैनी कम होगी। और जब आसक्ति कम होने लगेगी, तब 'मुझे यह

चाहिये, यह नहीं चाहिये' के भाव घटते रहेंगे, वासनाओंका क्षय होता रहेगा। केवल अपने पुरुषार्थसे वासनाओंके परे जाना असम्भव है। इसके लिये परमात्माके

महर्षि रमणकी मुक पश्-पक्षियोंके प्रति करुणा-भावना संख्या ११] संगतिका भी इसके लिये उपयोग हो सकता है। यदि कहीं भी, कभी भी साथमें ले जा सकते हैं। इसके लिये किसी बैरागीकी संगतिमें आयेंगे तो कपडोंका प्रेम, कपडे हमें विषयकी आसक्ति, विषयके साथ होनेवाली एकरूपता छोड़नी चाहिये। 'भगवान् मेरे साथ हैं' ऐसी श्रद्धा पहननेका शौक कम होगा। किंतु किसी सेठजीकी संगतिमें आयेंगे तो बनाव-सिंगारकी प्रवृत्ति होगी। अत: रखनेपर वृत्ति विषयके साथ एकात्म नहीं हो पाती। हनुमान्जीने सीताजीको मुद्रिका दी, उसे देखनेपर सीताजीको हमें ऐसी संगतिमें रहना चाहिये, जिससे शरणागत होनेकी भावना बढनेमें सहायता होगी। श्रीरामचन्द्रजीके स्वरूपका स्मरण हुआ। इसी प्रकार हमें भी नामस्मरण करते समय ईश्वरका ही निरन्तर स्मरण ईश्वरकी शरण जानेका या शरणागत होनेका मतलब है, उसे सर्वस्व समर्पित करके जीवन-यापन होना चाहिये। करना। इसका अर्थ है कि हम उपाधिरहित बनें। इसका भगवानुके अनुसन्धानमें जो बँधा हुआ रहता है, मानो उसने कालको पराजित कर दिया है। ऐसे लोगोंके तात्पर्य यह है कि हमें ऐसे ही साधनोंको जुटाना चाहिये या ऐसे ही साधनोंके साथ रहना चाहिये, जो उपाधिरहित मनमें मृत्युका डर क्यों होगा? भगवान्को सर्वस्व समर्पित करनेके कारण उसके मनमें वासना क्यों बची हों। ऐसा साधन है भगवानुका नामस्मरण करना। काल, रहेगी? और जहाँ वासना बची नहीं है, वहाँ मृत्युका वेला, परिस्थिति, ऊँच-नीच भाव, स्त्री-पुरुष, विद्वत्ता-प्रवेश नहीं हो पाता। वासना नष्ट होनेका मतलब है अनाडीपन, अमीरी-गरीबी, स्वास्थ्य-अस्वास्थ्य आदि देहबुद्धि नष्ट होना। वासनाओंके क्षयमें अहंकी मृत्यु है कोई बात नामस्मरणमें बाधा निर्माण नहीं कर सकती।

नामस्मरणके लिये कोई साधन या उपकरण भी अनिवार्य और अहंकी मृत्यु देखनेके लिये हमें भगवानुका नामस्मरण नहीं होता। वह तो हम अपने हृदयमें निरन्तर रख सकते निरन्तर करना चाहिये। हैं। नामस्मरणमें बैरागीको कष्ट नहीं है, वह तो हम

[संग्राहक—श्री गो० सी० गोखले]

महर्षि रमणकी मूक पशु-पक्षियोंके प्रति करुणा-भावना

(श्रीशिवकुमारजी गोयल)

महान् आध्यात्मिक विभूति महर्षि रमण जहाँ कुष्ठियों एवं बीमारोंकी अपने हाथोंसे सेवा किया करते थे, वहीं वे गायों, बन्दरों, मोरों, कबूतरों, तोतों आदि पशु-पक्षियोंको चारा, फल एवं दाना खिलाकर बहुत

प्रसन्तताकी अनुभूति करते थे।

एक बार आश्रमके एक कर्मचारीने आश्रममें एक बच्चेको घुड़की दिखानेके कारण एक बन्दरपर

डण्डेसे प्रहार कर दिया। बन्दरकी टाँगमें चोट आयी। महर्षिने उसे घायल देखा तो दुखित हो उठे। उन्होंने कर्मचारीको बुलाकर कहा—'मूक पश्-पक्षी प्रकृतिकी अनूठी देन हैं। इनमें भी वही आत्मा है, जो हम सबमें

है। इनके साथ क्रूरताका व्यवहार करना अधर्म एवं अन्याय है।'

कर्मचारीने कहा—'बन्दर बच्चोंको घुड़की दे रहा था। इसलिये मैंने क्रोधमें आकर डण्डा मार दिया।'

महर्षिने कहा—'भले आदमी! तुम भी बन्दरको घुड़क देते तो वह भाग जाता। उसे क्रूरतासे डण्डा मारना तो ठीक नहीं था।'

यह सुनते ही कर्मचारीने क्षमा माँगी तथा बोला—'मैं इस गलतीके लिये आज उपवास करूँगा।' महर्षि मुसकराकर बोले—'उपवासकी कोई आवश्यकता नहीं है। भविष्यमें किसी मूक प्राणीके साथ

ऐसा व्यवहार न करनेका संकल्प ही पर्याप्त है।'

भाग ९३ साधकोंके प्रति— शरीर नहीं, परमात्मा अपने हैं (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) प्राय: साधकोंकी यह धारणा रहती है कि करनेसे साधनकी सिद्धिमें विलम्ब होता है। कारण कि ये मान्यताएँ 'मैं' में रहती हैं और भगवान्का भजन ही सब कुछ होता है, इसलिये शुभ कर्म करने चाहिये। (उपासना) 'कर्म' में रहता है। साधकको चाहिये कि यह धारणा बडी अच्छी है, पर कर्म कर्ताके अधीन होते हैं। अत: कर्ता जैसा होता है, उसके द्वारा कर्म भी वैसे वह 'मैं भगवान्का हूँ'—इस प्रकार 'मैं' में भगवान्को ही होते हैं। कर्मयोग भी निष्काम कर्मसे नहीं होता, रखे और वर्णाश्रम आदिको 'कर्म'में रखे। तात्पर्य यह अपितु निष्काम कर्तासे होता है; अत: स्मरण, कीर्तन, है कि भीतरसे 'मैं तो भगवान्का हूँ' ऐसा मानते हुए

जप, ध्यान, स्वाध्याय आदि करना बहुत उत्तम है, इन्हें अवश्य करना चाहिये। इनमें जप, ध्यानादि कर्म एक तो स्वतः होते हैं और एक करने पडते हैं। जबतक कर्तामें भाव नहीं है, तबतक उसे जप-ध्यानादि करने पडते हैं, पर भाव होनेसे उसके द्वारा स्वत: स्वाभाविक ही जप, ध्यानादि होते हैं और तेजीसे होते हैं। अब कर्तामें भाव कैसे आये? इसपर विचार करना है। हैं, वहीं यह मान लें कि 'मैं भगवानुका हूँ'। इस प्रकार जब 'मैं'-पनमें अटल भाव हो जायगा, तब निरन्तर स्वत: भगवानुका भजन होगा। अभी तो घर (संसार)-का काम स्वत: होता है और रात-दिन निरन्तर होता है। जैसे नौकरी करते हैं तो समयपर जाते हैं और समयपर आते हैं, वैसे ही जप-ध्यानादि भी समयपर करते हैं। तात्पर्य यह है कि जप-ध्यानादि कर्म समयकी सीमामें

जहाँ हम अपने-आपको 'मैं हूँ' इस प्रकार मानते बँधे रहते हैं। यदि हमारा भाव हो जाय कि 'में भगवान्का हूँ और भगवान् मेरे हैं', तो घरके कामकी तरह रात-दिन सतत भगवान्का भजन होगा। भजनके बिना हम रह नहीं सकेंगे और घर (संसार)-का काम नौकरीकी तरह होगा। अत: कर्ताके भावोंमें परिवर्तन होनेसे कर्मोंमें स्वत: स्वाभाविक और शीघ्रतासे परिवर्तन हो जाता है। साधकसे भूल यह होती है कि वह 'मैं हूँ'के स्थानपर अपने नाम, वर्ण, आश्रम, जाति, सम्प्रदाय

आदिको बैठा देता है, जैसे मैं अमुक नामवाला हूँ, मैं

अमुक वर्णवाला हूँ, मैं साधु हूँ, मैं गृहस्थ हूँ आदि

अनेक मान्यताएँ कर लेता है। ऐसी मान्यताओंके कारण

'क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत' (गीता १३।२)। तात्पर्य यह कि क्षेत्रज्ञ तो केवल एक शरीरके साथ सम्बन्ध रखनेवाला है, पर क्षेत्रज्ञमें जो परमात्मा हैं, उनका किसी शरीरके साथ सम्बन्ध नहीं है और सबमें परिपूर्ण होनेके कारण उनका सबसे सम्बन्ध है! वे ही वास्तवमें अपने हैं। हम जिस शरीरको अपना मानते हैं, वह कभी अपना था नहीं, है नहीं और रहेगा नहीं। पर परमात्मा अपने थे, अपने हैं और अपने रहेंगे। वे अपनेसे कभी विमुख नहीं हुए। हमीं उनसे विमुख हुए हैं। वे

बाहरसे नाटकमें स्वॉॅंगकी तरह अपने वर्णाश्रम आदिके

भी अधिक सूक्ष्मरूपसे विराजमान हैं। 'मैं हूँ' क्षेत्रज्ञ

अर्थात् क्षेत्र (शरीर)-को जाननेवाला (गीता १३।१),

और भगवान् कहते हैं कि सब क्षेत्रोंमें क्षेत्रज्ञ मैं ही हूँ—

परमात्मा बडे मधुर हैं, बडे प्रिय हैं और अपनेमें हैं-

ऐसा माननेपर वे स्मरण किये बिना ही याद रहेंगे, भजन

किये बिना ही उनका भजन होगा, चिन्तन किये बिना

ही उनका चिन्तन होगा। उनमें स्वत: ऐसी प्रियता होगी, जैसी अपने शरीरमें और अपने जीते रहनेमें भी नहीं है।

'हूँ' में 'है' रूपसे परमात्मा ही है। तू है, यह है, वह

है—सब जगह परमात्मा ही 'है'-रूपसे विद्यमान हैं।

जड और चेतनमें, स्थावर और जंगममें, उत्पत्ति, स्थिति

और विनाशमें, भाव और अभावमें—सब जगह वे

परमात्मा ज्यों-के-त्यों हैं। साधक यदि 'हूँ' का त्याग कर दे अर्थात् 'मैं' (अहंता)-को मिटाकर सामान्य

'मैं हूँ' में जो 'हूँ' है, वह शरीरको लेकर है। उस

जहाँ साधक 'मैं हूँ' मानता है, वहाँ भगवान् उससे

कर्तव्यका पालन करता रहे।

```
सत्तामें स्थित हो जाय (जो वास्तवमें है) और 'है'
                                                   ही-आनन्द है, मस्ती-ही-मस्ती है। उसे प्राप्त करना
                                                   चाहें तो अभी कर सकते हैं। प्राप्त क्या करना है, वह
रूपसे विद्यमान परमात्माको अपना मान ले तो फिर
उनकी विस्मृति नहीं होगी। जप-ध्यानादि भी स्वतः
                                                   तो प्राप्त ही है। केवल दृष्टि उधर करनी है। इतनी
                                                   सीधी, सरल और श्रेष्ठ बात कोई नहीं है। गीतामें
होंगे, करने नहीं पड़ेंगे। अपनेमें प्रभु स्वतः हैं, बनावटी
नहीं हैं। जो अपनेमें स्वत: है, उसकी ओर दृष्टि करनेमें
                                                   भगवान् कहते हैं—
देरी किस बातकी ? अपनेमें प्रभुको देखनेवाला कौन है ?
                                                        भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।
जो क्षेत्रको देखता था, वही अपनेमें प्रभुको देखता है।
                                                        ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्॥
जिसका अंश है, उसीको देखता है। अपने अंशीको
                                                                                            (१८।५५)
देखते ही वह अंशीमें मिल जाता है।
                                                        'पराभक्तिके द्वारा वह मुझ परमात्माको, मैं जो हूँ
     अंशीमें मिलनेके दो तरीके हैं-अभेदपूर्वक और
                                                   और जितना हूँ, ठीक वैसा-का-वैसा तत्त्वसे जान लेता
अभिन्नतापूर्वक। पहले अभेद होता है, फिर अभिन्नता
                                                   है तथा उस भक्तिसे मुझे तत्त्वसे जानकर तत्काल ही
होती है। अभेदमें भेदकी कुछ गन्ध रहती है, पर
                                                   मुझमें प्रविष्ट हो जाता है।'
अभिन्नतामें यह मिट जाती है। अभिन्नता वास्तविक है।
                                                        'विशते तदनन्तरम्' पदोंका यह अभिप्राय है कि
                                                   भगवान्को तत्त्वसे जानने अर्थात् उनका अनुभव होनेके
अभिन्नता भेद-उपासना और अभेद-उपासना—दोनोंमें
                                                   बाद फिर उनसे अभिन्न होनेमें एक क्षणका भी अन्तर
होती है। भेदमें अभिन्नता ऐसे होती है कि जैसे कहींका
लडका और कहींकी लडकी गृहस्थाश्रममें आकर एक
                                                   नहीं पड़ता। शरीर-संसारसे माना हुआ सम्बन्ध छूटते ही
हो जाते हैं तो भिन्न-भिन्न होनेपर भी उनमें अभिन्नता
                                                   ज्यों-के-त्यों विद्यमान परमात्माका अनुभव हो जाता है।
हो जाती है। इसी प्रकार दो मित्रोंमें भी अभिन्नता होती
                                                   उनका अनुभव होते ही तत्काल भिन्नता मिट जाती है।
                                                   वास्तवमें भिन्नताकी सत्ता है ही नहीं, तभी वह मिटती
है। भिन्न-भिन्न होते हुए भी अभिन्न हो जाना 'ज्ञान'
है और अभिन्न होते हुए भी भिन्न-भिन्न हो जाना
                                                   है। यदि वास्तवमें भिन्नता होती, तो उस (सत्)-का
'भक्ति' है।
                                                   अभाव कैसे होता?
     स्वयं (स्वरूप) परमात्मासे अभिन्न है, परंतु संसार
                                                        असत् (संसार)-में जो आकर्षण या प्रियता है,
और शरीरसे सम्बन्ध माननेके कारण परमात्मासे भिन्नता
                                                   वह 'आसक्ति' कहलाती है। वही आकर्षण भगवान्में
                                                   हो जाय, तो उसे 'भिक्त' या 'प्रेम' कहते हैं। धनमें,
प्रतीत होती है। अत: संसार और शरीरसे विमुख हो जायँ
अर्थात् यह 'मैं' नहीं और 'मेरा' नहीं; और 'मैं' प्रभुका
                                                   भोगोंमें, परिवार आदिमें जो हमारा खिंचाव है, वह
हूँ और प्रभु 'मेरे' हैं—इस प्रकार परमात्माके सम्मुख हो
                                                   भगवानुकी ओर होते ही भक्ति हो जाती है। वास्तवमें
जायँ। सम्मुख होते ही उनसे अभिन्नता हो जाती है।
                                                   अपनेमें भक्तिका संस्कार—भगवान्का खिंचाव स्वत: है,
अभिन्नताके बाद फिर बड़ा विचित्र आनन्द प्राप्त होता
                                                   पर असत्से सम्बन्ध जोड़नेसे उसकी ओर हट गया।
है। वह (द्वैत) अद्वैतसे भी सुन्दर है—'भक्त्यर्थं
                                                   लक्ष्य (परमात्मा)-की प्राप्ति होनेपर असत्का खिंचाव
कल्पितं द्वैतमद्वैतादिप सुन्दरम्'। वहाँ केवल आनन्द-
                                                   सर्वथा मिट जाता है।
                  असुन्दरः सुन्दरशेखरो वा
                                                गुणैर्विहीनो गुणिनां
                                                                       वरो
                                                                              वा।
                  द्वेषी मिय स्यात् करुणाम्बुधिर्वा श्यामः स एवाद्य गतिर्ममायम्॥
      'मेरे प्रियतम श्रीकृष्ण असुन्दर हों या सुन्दर-शिरोमणि हों, गुणहीन हों या गुणियोंमें श्रेष्ठ हों, मेरे प्रति
 द्वेष रखते हों या करुणासिन्धु-रूपसे कृपा करते हों, वे चाहे जैसे हों, मेरी तो वे ही एकमात्र गति हैं।'
```

शरीर नहीं, परमात्मा अपने हैं

80

संख्या ११]

श्रीरामचरितमानस—एक महान् संतकी अद्भुत कृति (आचार्य डॉ० श्रीकेशवरामजी शर्मा)

श्रीरामचरितमानसकी रचना हुए लगभग साढे चार लोकप्रियताका एक छोटा-सा प्रमाण यह भी है कि प्रति वर्ष दशहरेसे १५ दिन पूर्वसे ही सभी ग्राम तथा नगरोंमें

सौ वर्ष हो गये हैं, परंतु भक्तप्रवर तुलसीदासजीकी मान्यता एवं लोकप्रियता आज भी हिन्दी साहित्यके रामलीलाओंके मंच सुसज्जित हो जाते हैं, जहाँ मानसके

क्षेत्रमें अप्रतिम है। संस्कृतके प्रकाण्ड पण्डित होनेपर भी राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्तजीने ठीक ही कहा

इन्होंने जन-जनतक अपनी वाणी पहुँचानेके उद्देश्यसे

हिन्दी भाषामें इसकी रचना की। उस समयतक प्रचलित

सभी छन्दोंका आवश्यकतानुसार सुन्दर प्रयोग किया।

आप रससिद्ध कवीश्वर हैं। अकेले मानसमें ही यत्र-तत्र

सभी रसोंके उत्कृष्ट उदाहरण सुलभ हैं। तुलसीने भाव-प्रकाशनके लिए विविध अलंकारोंका रसानुकूल प्रयोग

किया है। उपमा तथा उत्प्रेक्षा अलंकार कविको विशेष प्रिय हैं। अनेक स्थलोंपर इन अलंकारोंकी एक साथ ही ४०-५० तक आवृत्तियाँ करके आपने विशेष भाव-

सौन्दर्य उपस्थित किया है। स्थानाभावके कारण 'स्थाली-पुलाक-न्यायसे केवल एक उदाहरण प्रस्तुत है-

उदित अगस्ति पंथ जल सोषा। जिमि लोभिह सोषइ संतोषा॥ सरिता सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा॥ रस रस सूख सरित सर पानी। ममता त्याग करिहं जिमि ग्यानी।।

जानि सरद रितु खंजन आए। पाइ समय जिमि सुकृत सुहाए॥ (रा०च०मा० ४। १६। ३-६)

'किष्किन्धाकाण्ड' के दोहा सं० १३ से १७ तक पचास पंक्तियोंमें इन अलंकारोंकी सतत आवृत्तियाँ हैं।

जहाँतक 'मानस'का प्रश्न है, यदि तुलसी एकमात्र यही महाकाव्य लिखकर अपने साहित्यकी इतिश्री कर

देते तो भी वे हिन्दी साहित्यमें मूर्धन्य ही गिने जाते। आज करोड़ोंकी संख्यामें श्रद्धालुजन इसका नियमित

पाठ करते हैं और आरती उतारते हैं। लाखों हिन्दुओंकी

तो ऐसी स्थिति है कि जबतक वे पूजाका आसन जमाकर इस ग्रन्थरत्नकी कुछ चौपाइयोंका नियमित पाठ

नहीं कर लेते, तबतक जल भी ग्रहण नहीं करते।

आजीविकाकी खोजमें विदेश जानेवाले भारतीय अपने

साथ रामचरितमानस, हनुमानचालीसा तथा भगवद्गीताकी

आधारपर रामकथाका मंचन होता है।

है—'राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है, कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है।' रामकथा युग-युगसे हमारा मार्गदर्शन कर रही है। रामके आदर्श

चरित्रको देखकर अनेक कृपुत्रोंको सन्मार्ग दीख जाता है। सीताका पातिव्रत्य अनेक देवियोंको पथभ्रष्ट होनेसे बचा देता है।

मानसमें भारतीय संस्कृति और आदर्श जीवनके नीरस उपदेश न होकर उनका व्यावहारिक पक्ष प्रस्तुत

किया गया है। पिता-पुत्र, भाई-भाई, पति-पत्नी आदिके पारिवारिक सम्बन्धोंका आदर्श मानसमें चित्रित है। एक ओर दशरथ-जैसे स्नेही पिता हैं, जो स्वयं अपयश लेना

चाहते हैं, किंतु किसी भी मूल्यपर श्रीरामको आँखोंसे ओझल करनेको प्रस्तुत नहीं हैं। इसका प्रमाण तब मिल जाता है, जब सुमन्त्र रामको लौटानेमें असमर्थ रहकर अकेले अयोध्या लौट आते हैं। इस समाचारके मिलते ही महाराजके प्राण-पखेरू उड़ जाते हैं-

राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम। तनु परिहरि रघुबर बिरहँ राउ गयउ सुरधाम॥

रामका पितृ-स्नेह भी कुछ कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। वे पिताके स्नेही स्वभावको जानते हैं। परन्तु उनके यशकी रक्षाके लिये साग्रह वनके लिये प्रस्थान करते हैं और चौदह वर्षतक निष्ठापूर्वक माताको दिये गये

(रा०च०मा २। १५५)

[भाग ९३

वचनका अक्षरश: पालन करते हैं। आजके भाई कभी-कभी थोडी-सी सम्पत्तिके लालचमें एक-दूसरेके प्राणतक ले लेते हैं। उनके लिये राम तथा भरतका भ्रातृ-प्रेम आदर्श है, जो अयोध्याके एक्षांप्रक्षां जाति Discord Server हो ttps: संपेडिं नुवर्धि hatma-। र MADE भे एक - दूसरे अनि हते की प्रोने स्व

देते हैं। चित्रकूटमें राम-भरतका मिलन इतिहासकी ऐसी द्वारा प्रेमपूर्वक समर्पित बदरी-फलोंकी प्रशंसा करते हुए घटना है, जो युग-युगतक भाइयोंके प्रेमका आदर्श बनी ग्रहण करते हैं और सिद्ध कर देते हैं—'*मानउँ एक* रहेगी। भगति कर नाता।'(रा०च०मा ३।३५।५) इसी प्रकार

शत्रुको मित्र बना लेना ही बुद्धिमानी है

निषादराज तथा विभीषण आदिको वे आदरसहित—'*तुम* कालतक स्मरण किया जाता रहेगा। कैकेयीका आग्रह मम प्रिय भरतिहं सम भाई।'कहकर सम्मानित करते हैं। अकेले रामको वन भेजनेके लिये है। सूचना मिलते ही जब सीता वन जानेका हठ करती हैं, तो राम समझाते

पति-पत्नीके आदर्शरूपमें राम-सीताका अनन्त

हैं—'एहि ते अधिक धरम् नहिं दुजा। सादर सास्

बचनु न जाई॥' (रा०च०मा २।२८।४) अपने

कुलकी इस मर्यादाकी प्रभु रामने जीवनभर रक्षा की। रामचरितका गुणगान करते हुए तुलसीने प्रसंगवश इस ग्रन्थरत्नमें ज्ञान, भक्ति तथा कर्मकी व्याख्या करते हुए, सगुण भक्तिपर विशेष बल देते हुए, आदर्श पारिवारिक

ससुर पद पूजा॥' (रा०च०मा २।६०।५) सीताका तर्क इससे भी प्रबल है—'जिय बिन् देह नदी बिन् *बारी । तैसिअ नाथ पुरुष बिन् नारी ॥*' (रा०च०मा

तथा सामाजिक सम्बन्धोंका ऐसा प्रतिपादन किया है कि तुलसीने शबरी, केवट आदिके माध्यमसे सांकेतिक जबतक मानवता रहेगी, तबतक विविध आदर्शोंके

रूपमें अहम् भावका भी खण्डन किया है। राम शबरीके निमित्त इसकी उपयोगिता अक्षुण्ण बनी रहेगी।

शत्रुको मित्र बना लेना ही बुद्धिमानी है -

'रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुँ बरु

आया देख इन्द्र भयसे व्याकुल हो गये और ऐरावत हाथीको छोड़कर समुद्रके फेनमें घुस गये। फिर वज़में फेन लपेटकर उस फेनसे ही इन्द्रने अपने शत्रुका संहार कर डाला। जब नमुचिकी मृत्यु हो गयी,

१९

तब उसके छोटे भाई मयने अपने बड़े भाईके घातकका विनाश करनेके लिये बड़ी भारी तपस्या की। उसने अनेक प्रकारकी माया प्राप्त की, जो देवताओंके लिये अत्यन्त भयंकर थी। उसने सम्पूर्ण लोकोंको शरण देनेवाले भगवान् विष्णुसे भी वर प्राप्त किया। मय दानी और प्रियभाषी था। उसने इन्द्रको

जीतनेके लिये अग्नि और ब्राह्मणोंका पूजन आरम्भ किया। वह याचकोंको मुँहमाँगी वस्तुएँ देने लगा। वन्दीजन सदा उसकी स्तुति करते थे। इन्द्रने वायुसे अपने मायावी शत्रु मयकी गतिविधि जान ली। तब

वे ब्राह्मणका वेष बनाकर उसके पास गये और बोले—'दैत्यराज! मैं याचक हूँ, मुझे मनोवांछित वर दीजिये। मैंने सुना है आप दाताओंके सिरमौर हैं। अतः आपके पास आया हूँ।' मयने उन्हें ब्राह्मण

जानकर कहा—'दिया हुआ ही समझो। सामने याचकको पाकर दाता यह विचार नहीं करते कि थोड़ा दूँ या अधिक।' उसके यों कहनेपर इन्द्र बोले—'मैं तुम्हारे साथ मित्रता चाहता हूँ।' यह सुनकर मय दैत्यने कहा—'विप्रवर! ऐसे वरसे क्या लाभ! आपके साथ मेरा वैर तो है नहीं।' तब इन्द्रने अपने

पूर्वकालमें नमुचि दैत्योंका राजा था, उसका इन्द्रके साथ बड़ा भयंकर वैर हुआ। एक समयकी बात है—इन्द्र युद्ध छोड़कर कहीं जा रहे थे। यह देखकर दैत्यराज नमुचि भी उनके पीछे लग गया। उसे

२।६५।५)

संख्या ११]

वास्तविक रूपको प्रकट किया। इन्द्रको पहचानकर मयके मनमें बड़ा विस्मय हुआ।

'सखे! यह क्या बात है? तुम तो वज्रधारी हो। तुम्हारे योग्य यह कार्य नहीं है।' इन्द्रने हँसकर मयको हृदयसे लगाया और कहा—'विद्वान् पुरुष किसी भी उपायसे अपने अभीष्ट कार्यकी सिद्धि करते हैं।' तबसे मयके साथ इन्द्रकी गहरी मैत्री हो गयी। मय सदाके लिये इन्द्रका हितैषी हो गया। [ब्रह्मपुराण]

पतनके कारण

द्रौपदी और सहदेवको गिरे देख बन्ध्रप्रेमी शुरवीर नकुल शोकसे व्याकुल होकर गिर पडे। यह देख भीमसेनने

महाप्रस्थान करते समय पाण्डवोंने पश्चिमसे उत्तर दिशामें आकर महागिरि हिमालयका दर्शन किया। उसको लाँघकर जब वे आगे बढ़े तो उन्हें बालूका समुद्र

पुनः उनसे प्रश्न किया—'भैया! संसारमें जिसके रूपकी

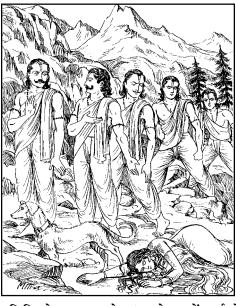
दिखायी पड़ा। तत्पश्चात् उन्होंने पर्वतोंमें श्रेष्ठ महागिरि

सुमेरुका दर्शन किया। समस्त पाण्डव एकाग्रचित्त होकर

बड़ी तेजीके साथ चल रहे थे। उनके पीछे आती हुई द्रौपदी लड़खड़ाकर पृथ्वीपर गिर पड़ी। उसे नीचे पड़ी

देख महाबली भीमसेनने धर्मराजसे पूछा—'भैया!

राजकुमारी द्रौपदीने कभी कोई पाप नहीं किया था; फिर बताइये, क्या कारण है कि वह नीचे गिर गयी?'



युधिष्ठिरने कहा—नरश्रेष्ठ! इसके मनमें अर्जुनके प्रति विशेष पक्षपात था, आज यह उसीका फल भोग रही है। यह कहकर धर्मात्मा युधिष्ठिर द्रौपदीकी ओर देखे

बिना ही अपने चित्तको एकाग्र करके आगे बढ गये। थोड़ी देर बाद सहदेव भी गिरे। उन्हें गिरते देख भीमसेनने युधिष्ठिरसे पूछा—'भैया! यह माद्रीनन्दन सहदेव, जो सदा हमलोगोंकी सेवामें संलग्न रहता और अहंकारको

कभी अपने पास फटकने नहीं देता था, आज क्यों धराशायी हुआ है?' युधिष्ठिरने कहा-राजकुमार सहदेव किसीको अपने-जैसा विद्वान् नहीं समझता था, इसी दोषके कारण इसे

आज गिरना पड़ा है।

भस्म कर डालूँगा' किंतु ऐसा किया नहीं। इसीसे आज इन्हें धराशायी होना पड़ा है। इतना ही नहीं, इन्होंने सम्पूर्ण धनुर्धरोंका अपमान भी किया था, जिसका फल इन्हें भोगना पड़ रहा है; अत: अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुषको ऐसा नहीं करना चाहिये। यों कहकर राजा युधिष्ठिर आगे बढ़ गये। इतनेमें ही भीमसेन भी गिर पड़े। गिरनेके साथ ही उन्होंने

युधिष्ठिर बोले—अर्जुनको अपनी शूरताका अभिमान

था। इन्होंने कहा था कि 'मैं एक ही दिनमें शत्रुओंको

समानता करनेवाला कोई नहीं था, जिसने कभी अपने

धर्ममें त्रुटि नहीं होने दी तथा जो सदा हमलोगोंकी आज्ञाका पालन करता था, वह हमारा प्रिय बन्धु नकुल

क्यों गिर पड़ा?' भीमसेनके इस प्रकार पूछनेपर युधिष्ठिरने

नकुलके सम्बन्धमें यों उत्तर दिया—'भीमसेन! नकुल

हमेशा यही समझता था कि रूपमें मेरे समान दूसरा कोई

नहीं है। इसके मनमें यही बात बैठी रहती थी कि मैं ही सबसे बढ़कर रूपवान् हूँ। इसीलिये इसको गिरना पड़ा है।' उन तीनोंको गिरे देख अर्जुनको बड़ा शोक हुआ और वे भी अनुतापके मारे गिर पड़े। दुर्धर्ष वीर अर्जुनको गिरे और मरणासन्न हुए देख भीमने पुन: प्रश्न किया—'भैया! महात्मा अर्जुन कभी परिहासमें भी झूठ बोले हों, ऐसा मुझे याद नहीं आता; फिर यह किस कर्मका फल है, जिससे उन्हें भी पृथ्वीपर गिरना पड़ा।'

धर्मराज युधिष्ठिरको पुकारकर कहा—'राजन्! जरा मेरी ओर तो देखिये। मैं आपका प्रिय भीमसेन हूँ और यहाँ गिरा हुआ हूँ; यदि जानते हों तो बताइये, मेरे गिरनेका क्या कारण है?' युधिष्ठिरने कहा—'भीम! तुम बहुत खाते थे और

दूसरोंको कुछ भी न समझकर अपने बलकी डींग हाँका करते थे; इसीसे तुम्हें भूमिपर गिरना पड़ा है।' यह कहकर महाबाहु युधिष्ठिर उनकी ओर देखे

बिना ही आगे चल दिये।

संख्या ११] जीव-शिक्षा-सिद्धान्त जीव-शिक्षा-सिद्धान्त [स्वामी श्रीहरिदासजीकृत अष्टादश पद] [श्रीराधामाधव-युगलोपासनाके परमाचार्य रसिक भक्तशिरोमणि स्वामी श्रीहरिदासजी (वि०सं०१५३७-१६३२)-ने कुंजबिहारी दिव्य युगलके लीलाचिन्तनमें निमग्न रहकर अनेक सुन्दर एवं गृढ़ पदोंकी रचना की, जो भक्तिपथके रिसक साधकोंके लिये अमूल्य सम्पत्ति-सदुश हैं। स्वामीजी श्रीश्यामा-श्यामके युगलस्वरूपको लाड़-लड़ाते हुए यद्यपि सदैव छकेसे रहते थे, परंतु रसोन्मत्त रहते हुए भी अपने परदु:खकातर एवं मृदुल स्वभावके कारण उन्होंने मायासे बँधे भावुक भक्तोंके कल्याणहेतु 'जीव-शिक्षा-सिद्धान्तके अष्टादश पद' को प्रकट किया। इन पदोंमें मानो वेद-पुराणादि समस्त शास्त्रोंमें प्रतिपादित कर्म-ज्ञान-भक्ति और रसिकताका सार समाहित है। ज्ञान-वैराग्य-भक्ति तथा प्रेमसे युक्त इन पदोंकी टटिया स्थानके बाबा श्रीअलबेलीशरणजीने एक विस्तृत व्याख्या की थी। श्रीराधामाधवके प्रेमी भक्तों और साधकोंके लिये अत्यन्त उपयोगी जानकर जीव-शिक्षा-सिद्धान्तके अष्टादश पदों और उनके मूल भावार्थको उसी पुस्तकसे संक्षिप्तकर 'कल्याण' के पाठकोंके हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है—सम्पादक] रसिक-अनन्य-नृपति श्रीस्वामी हरिदासजी महाराज

प्रथम पद ज्यौंही ज्यौंही तुम राखत हो त्यौंही त्यौंही रहियत है हो हिर।

और तौ अचरचे पाँइ धरौं सो तौ कहौ कौन के पैंड भरि॥ जद्यपि कियौ चाहौं अपनौ मन भायौ सो तौ कैसे^१ किर सकों जो तुम राखौ पकरि।

किं श्रीहरिदास पिंजरा के जनावर लौं तरफराइ^२ रह्यौ उड़िवै कौं कितौक करि॥१॥

भावार्थ—हे हरि! आप जैसे-जैसे रखते हो,

वैसे-वैसे ही रहा जाता है, अर्थात् मैं उसी-उसी प्रकारसे

रहता हूँ; क्योंकि मेरे स्वरूपकी स्थिति और प्रवृत्ति आपके ही अधीन है, और तो अचरचे—आपके विचार

अर्थात् आपकी इच्छा बिना पाँय धरौं, माने चलना चाहूँ या कुछ भी करना चाहुँ, तो कोनके सामर्थ्य—बलपर पैंड भरि सकों ? अर्थात् आपकी इच्छाके बिना एक

पाँव, एक डग भी नहीं धर सकता हूँ, फिर विशेष कर्तव्यकी तो बात ही कहाँ है?

यद्यपि आपको रुचिके बिना कुछ भी करनेकी सामर्थ्य नहीं है, फिर भी संकल्प-विकल्पात्मक मन

होनेसे वह नये-नये संकल्प-मनोरथ करता रहता है और जैसे-जैसे संकल्प होता है, वैसे ही सुखकी इच्छा होती है और प्रयत्न भी करता है, यह मनका स्वाभाविक

धर्म है। यद्यपि अपने मनकी रुचिके अनुसार करना चाहनेपर भी किसी भाँति मन-भाया कर नहीं सकता हूँ;

क्योंकि आपने गुण-स्वभावरूपी रज्जुसे बाँध रखा है, पकड़ रखा है, तो इधर-उधर कैसे भटक सकता हूँ?

कहते हैं- 'पिंजरेमें बन्द पक्षीकी भाँति जीव सर्वथा परतन्त्र है, श्रीहरिके अधीन है। यह शरीररूपी पिंजरेमें

बँधा हुआ उससे निकलने—छूटनेके लिये, सुख-प्राप्तिके लिये तड़फ रहा है; किंतु जैसे पिंजरेमें बन्द पक्षी पंख फडफडाकर रह जाता है, उड नहीं सकता,

ऐसे ही इस जीवकी दशा है। यह सर्वथा श्रीहरिके वशमें है। अथवा श्रीस्वामीजी महाराज गृढ् रहस्यका संकेत कर रहे हैं—शरणागतजन-उपासकजन तन-मन-वचनसे विश्वास-भावसहित भक्ति-साधन करनेपर भी अपने

बलसे न विकारोंको दूर कर पाता है और न भाव-प्रेम ही जाग्रत कर पाता है, इससे उसके मन-प्राण तडफते हैं, व्याकुल होते हैं, फिर भी वह निराश-निश्चिन्त होकर बैठता नहीं है। वह धैर्य-उत्साहसहित कुपासिन्ध्-

स्नेहवारिधि अपने प्राणाराध्य इष्ट-आचार्यके कृपा-स्नेहमय स्वभावको स्मरणकर उन्हींकी कृपा, सेवा, प्रेमकी प्राप्तिके लिये सदा तड़फता रहता है, सदा तत्पर,

तल्लीन रहता है। द्वितीय पद

काहू कौ बस नाहिं तुम्हारी कृपा तें सब होइ बिहारी बिहारनि। और मिथ्या प्रपंच काहे कौं भाखिये सो तौ है हारनि॥ जाहि तुमसौं हित तासौं तुम हित करौ सब सुख कारनि।

श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी प्रानिन के आधारनि॥ २॥ भावार्थ-हे श्रीबिहारी-बिहारिणि! सुर-मुनि-

मोहिनी आपकी दुर्जय मायाकी प्रबलताके अधीन होनेसे कहते हैं कि हमारे प्राणोंके आधार सर्वस्व महामधुर किसीका बल नहीं है, जो साधन-प्रयत्न करके मायासे नित्य निकुंजरसविलासी श्रीश्यामा-श्याम-कुंजविहारिणी-पार हो जाय; क्योंकि सभी आपकी मायामें भटक रहे कुंजविहारी हैं। तृतीय पद हैं। जो कुछ भी होता है, वह सब आपकी कृपासे ही होता है। जीवको आत्मस्वरूपका ज्ञान और आत्म-कबहुँ कबहुँ मन इत उत जात यातेंब कौन अधिक सुख। समर्पणादि भक्तिके अंग-साधन-इन सबका कारण बहुत भाँतिन घत आनि राख्यौ नाहिं तौ पावतौ दुख॥ आपकी कृपा ही है। कोटि काम लावण्य बिहारी ताके और कुपाके आश्रयके बिना शरीरमें आत्मबुद्धि, मुँहाचुहीं सब सुख लियें रहत रुख। अहंबुद्धि, ममबुद्धि करना यह मिथ्या-असत् ज्ञान श्रीहरिदासके स्वामी स्यामा कुंजिबहारी है। प्रपंच, नाम-बहिर्मुखताको उत्पन्न करनेवाला कौ दिन देखत रहीं विचित्र मुख॥३॥ मायाजाल—संसार तथा भगवत्प्राप्तिके विरोधी जो भी भावार्थ-अनादि अविद्याजन्य कर्मात्मक मायाके वस्तु—साधन हैं, इनको कहना, इनका वर्णन करना, यही वशमें अधिक कालसे विषय-वासनामें फँसा हुआ जो महान् अनर्थकर दोष है, यही महान् अज्ञान है, इसको मन है, वह जीवका भक्तिमें प्रवेश होनेसे कभी-कभी न करना चाहिये। मिथ्या प्रपंचको कहना, यह कैसा भगवद्भावनासे हटकर विषयोंकी ओर चला जाता है, तो है, **हरणशील** है, माने आत्मस्वरूपको, भगवद्दासत्वको भी कहते हैं-'इससे अधिक सुख कौन-सा है? भुलानेवाला और शरीरमें अहं-मम उत्पन्न करनेवाला है, मृगतृष्णावत् संसारके सुखोंमें मुग्ध हुआ मन भटक रहा है, उसे बहुत प्रकारके घत—दाँव-उपायोंसे अनेक अर्थात् भक्तिस्वरूपसे गिरानेवाला है। हित शब्द-प्रीतिसामान्यका वाचक है। जो जीव युक्ति-साधनोंसे विषयोंसे हटाकर श्रीविहारीजीके श्रीचरणोंमें जिस भावसे आपसे प्रीति करता है, आप भी उसी लगाया। यदि आपके श्रीचरणोंमें नहीं लगाता, तो बहुत भावसे प्रेम करते हो। जो आपसे प्रीति—प्रेम करता है, दु:ख पाता। अरे मन! तू सुखके लिये भटक रहा है। सुखके उससे आप भी प्रीति—प्रेम करते हैं। अथवा आपकी कृपाके बिना जीव कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं है। मूल-आधार, सुखके स्वरूप, सुखके सिन्धु तो जिसका आपके प्रति प्रेम है, जो आपसे प्रेम करता है, श्रीविहारीजी हैं। वे करोड़ों कामदेवोंके लावण्य-सौन्दर्यसे इससे यह सिद्ध हुआ कि उससे आप प्रेम करते हैं। उसे भी अत्यधिक सुन्दर हैं। सब सुख उनके श्रीचरणोंके आश्रित हैं, उनकी उपासना करते हैं। उनके सन्मुख आप चाहते हैं, उससे आप मिलनेको व्याकृल हैं; क्योंकि आप सब सुखोंके कारणस्वरूप हैं, सर्व सुखोंके दृष्टि-सों-दृष्टि जोड़े हुए, उनकी रुचिके अनुसार

भाग ९३

इस प्रकार पाँचों रसोंके स्वरूपका संकेत करके मेरे स्वामी श्यामा-कुंजिवहारिणि-कुंजिवहारीका दिन अब नित्य निकुंज-विहार रसको पृथक्रूपसे दिखाते हैं। माने नित्य-प्रतिदिन विचित्र मुख देखता रहता हूँ, Hindusmadiscord server hहिद्दामुजी महुद्वामुली विद्याली प्रसान कि स्वामित्र स्वामी स्वाप्त स्वाप्त स्वाप्त स्वापत स्वाप्त स्वापत स्वाप्त स्वापत स्

सेवा करनेमें ही सब सुख है। आपकी फख-माने

रुचिके अनुसार सखीजन सेवन करनेमें ही अपनेको

कृतार्थ मानती हैं, सब सुखोंको प्राप्त करती हैं।

श्रीस्वामी हरिदासजी महाराज कहते हैं कि इसीलिये

दाता हैं। जो जिस भावसे आपसे हित करता है, उसी

भावके अनुसार आप सुख देनेवाले हैं; क्योंकि आप

सुख-विशिष्ट हो और अपने भक्तोंको लोकोत्तर परमाद्भुत

शुद्धसत्त्वमय सुखके दाता हो।

संत-स्मरण (परम पूज्य देवाचार्य श्रीराजेन्द्रदासजी महाराजके गीताभवन, ऋषिकेशमें हुए प्रवचनसे साभार) 🕸 कराचीमें दवे परिवार था। बड़े पुत्र वासुदेव और आगे चले जाओ, ऐसे महात्मा हैं, जो मिट्टीको छू दें तो छोटे कन्हैया। वासुदेव बचपनसे ही भजनमें लगे रहे, मिसरी हो जाय। आगे बढे तो चमेलीकी झाडीतले एक विवाहका प्रसंग आया तो कहा कि शरीर तो भजनके लिये जटाधारी महात्मा बैठे दीखे। पासमें धूना जल रहा था। बैठने लगे तो उन्होंने कहा—पहले स्नान करके आओ। पासमें मिला है। भोजनके लिये बुलाया जाय तो डकार लेने लगें कि पेट भरा है, भोजनका ग्रास मुखकी जगह कानमें ले जलस्रोत था, वहाँ स्नान किया और आकर बैठे तो जायँ। भजन करनेको श्मशानमें चले जायँ, कहें कि मृत्युके महात्माजीने आद्योपान्त अबतककी सारी घटना सुना दी और

माँ विन्ध्यवासिनीकी स्तृति

कहा कि वह बालक और कोई नहीं, साक्षात् सनत्कुमार

निकट भजन अच्छा बनता है। घरमें सबको भव-रोग लगा है, वहाँ हमें भी लग जायगा। दवेजीके छोटे पुत्र कन्हैया कराचीके घरसे ही चल

संख्या ११]

पड़े कि गृहस्थीका प्रपंच न लगे। कहा, तीर्थ-यात्रापर जायँगे। चलते हुए अक्षय तृतीयाके दिन श्रीवृन्दावन पहुँचे।

वहाँ दर्शनादि करके सोंरोंजी धाममें गये। भजन किया और बोले कि हम इस शरीरसे परिवारमें किसीकी सेवा नहीं कर सके। अब हमारा समय पूरा हो गया। श्रीठाकुरजी विमानपर बैठे हैं और हमें बुला रहे हैं। ऐसा कहकर शरीर

छोड दिया। 🕏 वृन्दावनके सन्त पहाड़ीबाबाजी महाराजको धुन

आयी कि भगवान्का दर्शन करना है, सो चल पड़े उज्जैनकी ओर भगवान् महाकालके दर्शन करने, बिना बताये अकेले। देवासके पास जंगलमें थके-हारे एक शिवालयमें लेट गये।

उन्हें लगा जैसे कोई उनकी जटा पकडकर खींच रहा है। उठकर बैठ गये तो अत्यन्त तीव्र प्रकाशमें शिवजीकी झलक

आयी, जैसे डमरू हाथमें लिये कह रहे हैं-जा, उत्तर दिशामें जा, महात्मा मिलेंगे, तेरा काम बन जायगा। चूँकि

शिवलिंगकी जलहरी उत्तर दिशाकी ओर होती है, उसीको पकड़कर चल दिये। कुछ दूर आगे बढ़नेपर एक बालक दीखा। जाड़ेके दिन थे, फिर भी वह बिलकुल नंग-धड़ंग। उसीसे पूछा, इधर कोई महात्मा रहते हैं क्या ? उसने कहा— पार है।—'प्रेम'

हमारा है तो यही रहेगा। पिता बोला—यह तो कहनेकी बात थी, कोई सचमुच आपका बच्चा थोड़ी हो गया। महात्मा बोले-बस, यही फर्क है। भीतरसे सारे सम्बन्धोंको नकली समझो और असलीका अभिनय करते रहो तो बेड़ा

थे। तुम्हारा काम वहीं हो जाता। कोई बात नहीं। पूज्य

बाबाजी कहते थे कि उस समय मनमें आया कि ये महात्मा

किसी तन्त्रविद्यासे मिट्टीको मिसरी बनाते हैं क्या! किंतु अब

इन्हीं नेत्रोंसे ठाकुरजीके दर्शन होते रहते हैं। समझ आ गयी

कि यह देह ही मिट्टी है। इस देहमें रहते हुए ब्रह्मानन्दका

अनुभव होता रहे तो यह मिट्टी मिसरी बन जाती है।

कराते थे। केवल मानसकी चौपाई और अर्थ पढ़कर सुनानेको कहते थे और कोई बात नहीं। किसी सत्संगीके

साथ उसका छोटा पुत्र एक दिन सत्संगमें आ पहुँचा।

उसकी चंचलतासे सबका ध्यानभंग होता देखकर महात्माजीने पूछा—किसका बच्चा है ? उसके पिताने सहज भावसे कह

दिया—आपका ही है। महात्माजीने बच्चेसे कहा ठीकसे

बैठ और सत्संग करने लगे। समाप्तिपर जब उस बच्चेका

पिता उसे लेकर जाने लगा, तब महात्माजीने बच्चेका हाथ पकड लिया और बोले—यह नहीं जायगा। तुमने कहा यह

🕸 विदिशामें एक महात्मा रामचरितमानसका सत्संग

माँ विन्ध्यवासिनीकी स्तृति (डॉ॰ महेशजी पाण्डेय 'बजरंग')

वसुदेव घरे जनमीं प्रकर्टीं, उनकौ हम शीश झुकावत हैं। उर में जिनके ममता बहती, हिय में उनहीको बिठावत हैं॥ मनमें अनुहार बसी जिनकी, उनकौ हम ध्यान लगावत हैं। मैया महिषासुरमर्दिनी की, छिन-छिन जयकार मनावत हैं।।

भाग्य-पुरुषार्थ-विवेक (ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी महाराज, अखिल भारतवर्षीय धर्मसंघ) भाग्य बडा है कि पुरुषार्थ बडा है ? यह यक्षप्रश्न बलवान् इति विधिरहो मे अनादिकालसे चला आ रहा है, तब अभी कैसे मिट भाग्य ही बलवान् है, ऐसा मेरा मत है। सकता है ? परंतु जो भी लोग इस प्रश्नको लेकर बैठे रहते होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को किर तरक बढ़ाविह साखा।।

हैं, सैकडों बार विवाद करनेपर भी समाधान न पा सके हैं, सो उनके पास करनेको कार्य कम है, खोनेके लिये समय

अधिक है; क्योंकि वे भाग्य तथा पुरुषार्थका वास्तविक अर्थ

जानते ही नहीं। जो इन दोनोंको सच्चे अर्थींमें जान लेता है, वह न तो प्रश्न ही करेगा, न विवादका हिस्सा बनेगा। तो

आओ, इस जडमें जाकर ये जानें कि भाग्य क्या है ?

भाग्य-भाग्य. दैव. नसीब. तकदीर. प्रारब्ध. नियति—ये सब पर्यायवाची हैं। पूर्वजन्मकृत विविध

कर्मों के समूहसे इस जन्मके आरम्भमें (जन्मसे पूर्व ही), जो कर्मसमृह परिणाम (फल) देनेको निर्धारित किये जा

चुके हैं, उसको ही हम भाग्य कहते हैं। प्रषार्थ-इस वर्तमान जन्ममें पुरुष जो कर्म सम्पादित करता है, उसे ही पुरुषार्थ कर्म अथवा उद्योग

कहते हैं। शास्त्रोंके अनुसार तीन प्रकारके कर्म होते हैं-१. प्रारब्ध, २. क्रियमाण, ३. संचित कर्म।

प्रारब्ध—संचित कर्मसमृहसे इस जन्मके निर्वाहहेत्

निर्धारित कर्मींका लेखा-जोखा।

क्रियमाण—वर्तमानमें मनुष्य जो भी अच्छा या बुरा कर्म करता है, वह क्रियमाण कहलाता है।

संचित कर्म — अनेकों जन्मोंके सम्पादित कर्मोंके

समृहको संचित कर्म कहते हैं। यद्यपि दोनों पक्षोंके समर्थनमें पर्याप्त वचन

ग्रन्थोंमें सुलभ हैं— भाग्यपक्षमें—

भाग्यं फलति सर्वत्र, न विद्या न च पौरुषम्।

भाग्य ही बलवान् है, विद्या तथा पौरुष नहीं। यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः। जैसा विधाताने पूर्वमें ललाट (भाग्य)-में लिख

दिया, उसको कौन मिटा सकता है।

टरड

जो

रचइ

बिधाता।

सन मिटहिं कि बिधि के

लाखन कोशिश करि मरौ, बात बने नहिं कोय। भाग्य फरै फुर में सुनो, विधि निरधारित होय॥

पुरुषार्थपक्षमें— उद्यमेन हि सिद्ध्यन्ति कार्याणि न मनोरथै:। उद्योग (पुरुषार्थ)-द्वारा ही कार्य सिद्ध होता है, केवल मनोरथ करनेसे नहीं। सोये हुए शेरके मुखमें

हिरण प्रवेश नहीं करता। उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी:। कर्मशील श्रेष्ठ पुरुषको ही लक्ष्मी प्राप्त होती है।

कर्मणैव ही संसिद्धिमास्थिता जनकादयः। जनकप्रभृति महापुरुषोंने भी कर्मके द्वारा ही सिद्धिको प्राप्त किया। अकुर्वन्नोदरापूर्तिः, अकुर्वन्नो फलोदयः

बिना कर्म किये न पेट भरता है, न फलकी ही प्राप्ति होती है।

सकल पदारथ हैं जग माहीं। करमहीन नर पावत नाहीं॥

दैव दैव आलसी पुकारा। कर्म प्रधान बिस्व रचि राखा। जो जस करइ सो तस फल चाखा।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समाः यहाँ वेदविहित कर्म करते हुए ही १०० वर्षतक

जीनेकी इच्छा करनी चाहिये। समन्वय—

> यथोभाभ्यां हि पक्षाभ्यां नभस्युइडीयते खगः। तथैव कर्मभाग्याभ्यां नरस्य चोन्नतिर्भवेत्॥

संख्या ११] भाग्य-पुरुष	गार्थ-विवेक २५
**************************************	<u> </u>
जैसे पक्षी दोनों पंखोंके सहारे ही उड़ता है,	शरीरोंमें यथासमय प्राप्त होता है।) अब आप ही सोचें कि
उसी प्रकार प्राणी कर्म तथा भाग्यके सहारे ही उन्नतिको	बिना मतलबका व्यर्थ विवाद करना, अपने बहुमूल्य
प्राप्त होता है। सच कहें तो भाग्य और पुरुषार्थ	समयको खोना है कि नहीं? देखिये! यदि आप
एक सिक्केके दो पहलूकी तरह हैं, एक-दूसरेके	पुरुषार्थको ही मानते हो तो समझ लीजिये आप अधूरे हो,
बिना ये रह नहीं सकते। पुरुषार्थ है तो भाग्य होगा	अपूर्ण हो। अच्छा बताओ! एक ही हॉस्पिटलमें एक
ही, भाग्य है तो पुरुषार्थको रहना ही होगा। इसको	समयमें दो बालकोंका जन्म हुआ। उनमें एक बहुत गोरा,
समझनेके लिये कहा जा सकता है कि पकी फसल	एक बहुत काला। एक बहुत धनवान्, एक बहुत गरीब।
भाग्य है तथा बीज बोना पुरुषार्थ है। बागसे तोड़कर	एक ब्राह्मणकुलमें, एक शूद्रकुलमें। एकके माता-पिता
फल लाना भाग्य है, फलोंके लिये बाग लगाना	अनपढ़, एकके विद्वान्। एकके नास्तिक-अधार्मिक,
पुरुषार्थ है। सपरिवार किसान आज जो भोजन करता	एकके बड़े सत्संगी। एक बड़ा होकर सुन्दर गानेवाला
है, रोटी-सब्जी-दाल-चावल-मिर्च-सलाद आदि सब	हुआ, एकको गानेका लय-सुर-ताल भी पता नहीं। अब
उसने पुरुषार्थ करके पहले पैदा किया था। गेंहू,	आप ही अपने-आपसे पूछो तथा अपने-आप समाधान
चावल, मक्का, मूँग, अरहर आदि वह सब पककर,	खोजो कि यदि केवल कर्म या पुरुषार्थ ही सब कुछ है, तो
कटकर, साफ होकर घर आया रखा हुआ है, उससे	जो बच्चा गोरा है, उसने गोरा होनेके लिये कौन–सा शुभ
निकालकर नित्य परिवारसहित खा रहा है। अर्थात्	कर्म या पुरुषार्थ किया है ? अथवा जो काला है, उसने
पहलेका बोया हुआ, किया हुआ, आज काम आ	काला होनेके लिये क्या बुरा कर्म कर दिया ?
रहा है। तब फिर जब किसानके पास खानेके	क्या कोई पुरुषार्थके द्वारा इस शरीरको सुन्दर-
लिये पर्याप्त भरा हुआ है, तो अब भी नित्य	शक्तिशाली बना सकता है? क्या कोई केवल पुरुषार्थसे
किसान खेतमें क्यों जाता है? क्यों परिश्रम करता	सुरीले कण्ठवाला गायक हो सकता है? वैज्ञानिक
है ? क्योंकि वह जानता है, पहलेका किया परिश्रम	रीतिसे यदि कोई पूरे शरीरमें परिवर्तन करा भी ले तो
(पुरुषार्थ-कर्म) आज खानेको दे रहा है, आजका	कितने लोग ये सब करा सकते हैं? आजकल सुना
परिश्रम (पुरुषार्थ-कर्म) आनेवाले कलकी व्यवस्थाके	है, लड़की-लड़का लिंग-परिवर्तन करा सकते हैं,
लिये है।	प्लास्टिक सर्जरीसे रंग बदलवा सकते हैं, शायद गला
अब तो बात स्पष्ट हो गयी होगी कि भाग्य क्या	भी बदलवा सकते हों, तब भी ये तो पक्का है कि
है तथा पुरुषार्थ क्या है। सज्जनो! हमारे द्वारा किये गये	ये विषमता, भिन्नता इस जन्मके कर्म या पुरुषार्थका
कर्मके ही समय-भेदसे दो नाम पड़ जाते हैं। पिछले	नहीं है। तब आपको विवश होकर पिछले जन्मोंके
जन्मोंमें किये गये जो पके हुए कर्म (पुरुषार्थ) हैं,	कर्म स्वीकार करने ही पड़ेंगे और वही भाग्य है।
उनको भाग्य कह दिया जाता है तथा वर्तमान शरीरद्वारा	एक बात और स्पष्ट समझ लीजिये। पिछले जन्मोंके
किये जानेवाले कर्म (परिश्रम)-को पुरुषार्थ कहा जाता	पुरुषार्थ या कर्मको ही वर्तमान जन्ममें भाग्य कहते
है। अर्थात् फल देनेमें सक्षम कर्मसमूह भाग्य है, अभी	हैं और वर्तमान जन्मके कर्म या पुरुषार्थको ही अगले
फल देनेमें अक्षम कच्चे कर्मको पुरुषार्थ कह सकते हैं;	जन्मोंका भाग्य समझना चाहिये। पुरुषार्थ अर्थात् बाग
क्योंकि शास्त्रकार कहते हैं—	लगाना, फसल बोना। भाग्य अर्थात् फल मिलना,
सद्यः फलन्ति देवानां कर्माणि हि द्विजोत्तम।	अन्न मिलना।
कालेन कर्मसिद्धिश्च नृणां देहान्तरे सदा॥	अब दो बात उनसे भी कर लें जो पुरुषार्थको महत्त्व
(देवताओंको उनके कर्मोंका फल तुरंत प्राप्त हो	नहीं देते, केवल भाग्य-भाग्य चिल्लाते रहते हैं, तथा
जाता है, परंतु मनुष्योंको उनके कर्मोंका फल दूसरे	अपने पक्षमें सैकड़ों सच्ची-झूठी दलील देते हैं। कहेंगे

भाग ९३ देखो! भाग्यका फल, किसीको तो बिना कुछ किये नहीं रही। जिन लोगोंने इस व्यक्तिको पहले मेहनत करते कितनी आसानीसे सब कुछ मिल गया। जबिक कर्म देखा है, उनको तो संशय नहीं होगा, परंतु जो लोग इस करनेवाला १२ घण्टेतक रिक्शा चलाता मजदुरी करता है, सच्चाईको नहीं जानते होंगे, वे नादान तो यही कहेंगे कि तब भी केवल पेटभर रोटी कमा पाता है। अत: भाई! देखो, कैसा नसीबवाला है, मजेसे पडा-पडा खाता है। पुरुषार्थसे कुछ होनेवाला नहीं, जो होगा तकदीरसे ही परंतु सज्जनो! यही सच है, जो पिछले जन्मोंमें अच्छा होगा। भाग्यमें जो लिखा है, होना वही है आदि, परंतु करके आया है, उसको अल्प श्रम करनेपर भी अधिक विचारकोंने कहा है और परिस्थितियाँ भी ऐसा ही बोल प्राप्त होता है, जो नहीं करके आया है, उसको अब करना रही हैं कि दुनियाके जितने भी नाकारा, आलसी, प्रमादी, पड़ेगा, तब आगे मिलेगा। सच तो ये है कि रोटी, कपडा, अकर्मण्य, असफल लोग हैं, उनमें ९९ प्रतिशत लोग मकान तो प्रारब्धवश मिल ही जाते हैं, पुरुषार्थ तो केवल भाग्यको कोसनेवाले ही मिलते हैं। सफलतम उत्साही परमात्मा-प्राप्तिके लिये करना चाहिये। परीक्षा देते समय जागरूक लोगोंमेंसे केवल ५ प्रतिशतने पूरी तरह भाग्यको, पुरुषार्थ आवश्यक है, परीक्षाफलके आनेपर भाग्यको कुदरतको श्रेय दिया। आत्मविश्वाससे उद्दीप्त चेहरेवाले स्वीकार कर लेनेमें हानि नहीं। सन्त कहते हैं—'करनेमें' अधिकांश सफल लोग भगवान्की कृपा (भाग्य)-के सावधान रहें तथा 'होनेमें' प्रसन्न रहें। अर्थात् कार्य-साथ पारिवारिक सहयोगको तथा उचित समयपर उचित सम्पादनके प्रति बुद्धिमत्तापूर्वक सावधानी, सक्रियता, दिशामें किये गये समुचित प्रयास (पुरुषार्थ)-को ही कार्य-कुशलता, सजगता आवश्यक है और कार्य सम्पन्न सफलताका श्रेय देते हैं। अकेले भाग्यके भरोसे बैठे रहना होनेके उपरान्त अनुकूलता हो या प्रतिकूलता—सर्वथा खेतमें बीज न बोकर फसलके घर आनेकी आशा करना प्रसन्न ही रहना चाहिये। किसी सेठके यहाँ एक सज्जन व्यक्ति नौकरी है। बिना कर्मके कुछ होनेवाला नहीं है। न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्। करता था, बिना अवकाश लिये। ईमानदारीसे अपने (एक क्षण भी कोई बिना कर्म किये रह नहीं मालिकके हितमें प्रसन्नतासे लगा रहता। बहुत वर्ष सकता है।) थालीमें भोजन भाग्यसे आ सकता है, उपरान्त सहसा वह व्यक्ति बिना बताये कामपर नहीं परंतु ग्रास तोड़कर तो मुखमें डालना ही पड़ेगा न! आया। सेठने सोचा कि शायद उसका वेतन कम था तथा वह संकोचवश बोला नहीं, अत: कहीं दूसरी नौकरी भाग्यसे लग सकती है, परंतु उस पदपर बने जगह अधिक वेतनपर चला गया। तीन दिन बाद रहनेको तो पुरुषार्थ करना ही पड़ेगा ना! ये नहीं हो सकता कि आप बलात् जलती आगमें कूद जाओ जब सेवक आया तो सेठने पूरा वेतन देकर ५०० और फिर कहो कि भाग्यमें होगा तो नहीं जलेंगे। रुपये बढ़ा दिये। सेवक कुछ न बोला, काम चलता चलती ट्रेनके आगे कूदकर बोलो कि नसीब होगा रहा। कुछ दिन बाद पुन: अचानक वह सेवक बिना तो बच जायँगे। हाँ, ये सच है कि भाग्यका अनुकूल बताये कामपर न आ सका। जब १२ दिन बाद वह होना और पुरुषार्थका सही दिशामें समुचित मात्रामें आया, तब सेठने मनमें सोचा कि इसको लोभ आ होना ही सफलताका सूचक है। गया है, यह अपना वेतन बढानेके चक्करमें हमको भाग्य एवं पुरुषार्थको दूसरे उदाहरणसे भी समझ नखरे दिखाता है। अत: अबकी बार वेतन तो दिया, सकते हैं, जैसे-कोई व्यक्ति कठिन परिश्रम करके युक्तिसे परंतु ५०० रुपये कम कर दिये। सेवकने चुपचाप जीविका भी चलाये तथा कुछ धन बैंकमें जमा भी करता रखे और कामपर जाने लगा। न खुशी न गम, न रहे। धीरे-धीरे एक समय ऐसा आयेगा कि इतना धन शर्त न शिकायत! सेठ चिकत था, उसने पूछा भाई! तुम बाबा हो क्या? ५०० रुपये बढ़ाये तो ख़ुशी जमा हो जाय, जिसके ब्याजमात्रसे ही घरका खर्चा असिंगनीसं अस् पांबन्ता, पुंबिक्समा क्रांमका / अवस्वप्रती वम्हान् ५० M रूपि धरीय ते पुर्से वर्षा ने पंचन क्रांमका

क्यों शान्त रहे?' सेवक बोला—'साहब! अचानक है ? क्यों छुट्टियाँ कीं बिना बताये ? विनम्रतापूर्वक

> मेरी बढ़ी माँका देहान्त हो गया था, उसके संस्कार आदिमें इतने दिन लग गये। जब आपने ५०० रुपये

> कम किये तो मैंने भगवान्का धन्यवाद दिया तथा

सज्जनो! भाग्य और पुरुषार्थ—दोनों संग-संग चलते

विश्वासघातका दण्ड

दिये तो मुझे लगा कि भगवानुने उसके आते ही सोचा वाह प्रभु! माँ गयी तो उसका भाग्य भी समेट व्यवस्था कर दी है। इस बालकका भाग्य (प्रारब्ध) लिया।' सेठने सेवकके चरण पकडकर कहा— काम करने लगा है।' सेठका हृदय भावुक हो गया, 'महाराज! आप सन्त हैं, मैं आपको गुरु मानता हूँ।'

क्यों न बताया? अच्छा, परंतु ५०० रुपये घटाये तब हैं, काम करते रहो, राम रटते रहो।

सेवक बोला—'सेठजी! पिछली बार मेरे घर एक

बालकका जन्म हुआ, अत: बतानेका अवसर न मिला,

और मुझे घर रहना पड़ा। जब आपने ५०० रुपये

उसने पूछा—'भाई! इतनी खुशीका समाचार हमको

संख्या ११]

विश्वासघातका दण्ड चन्द्रवंशमें नन्द नामसे प्रसिद्ध एक महाराजा थे, जो समुद्रपर्यन्त पृथ्वीका धर्मपूर्वक पालन करते थे। उनके

एक पुत्र हुआ, जिसका नाम धर्मगुप्त था। नन्दने राज्यकी रक्षाका भार अपने पुत्रपर रख दिया और स्वयं इन्द्रियोंको वशमें करके आहारपर विजय पाकर तपस्याके लिये तपोवनमें चले गये। पिताके तपोवन चले

जानेपर राजा धर्मगुप्तने सारी पृथ्वीका पालन किया। वे धर्मींके ज्ञाता और नीतिपरायण थे। उन्होंने अनेक

प्रकारके यज्ञोंद्वारा इन्द्र आदि देवताओंका पूजन किया और ब्राह्मणोंको धन एवं बहुत-से क्षेत्र प्रदान किये। उनके शासनकालमें समस्त प्रजा अपने-अपने धर्मका पालन करती थी। उनके राज्यमें कभी चोर आदिसे किसीको

कष्ट नहीं प्राप्त हुआ। एक दिन धर्मगुप्त उत्तम घोड़ेपर सवार हो वनमें गये। वहीं रात हो गयी। विनयशील राजाने वहीं सायं-सन्ध्याकी उपासना करके वेदमाता गायत्रीका जप किया। तत्पश्चात् सिंह, व्याघ्र आदिके भयसे वे एक वृक्षपर बैठे। उस वृक्षके पास एक रीछ आया, जो सिंहके भयसे पीड़ित था। वनमें विचरनेवाला एक सिंह

उस रीछका पीछा कर रहा था। रीछ वृक्षपर चढ गया। वहाँ उसने महानु बल-पराक्रमसे सम्पन्न राजा धर्मगुप्तको बैठे देखा। उन्हें देखकर रीछ बोला—'महाराज! भय न करो। हम दोनों रातभर यहीं रहेंगे; क्योंकि वृक्षके नीचे

बड़ा भयंकर सिंह आया हुआ है। महामते! तुम आधी राततक निर्भय होकर नींद लो, मैं सजग होकर तुम्हारी रक्षा करता रहूँगा। उसके बाद जब मैं सो जाऊँ, तब शेष आधी राततक तुम मेरी रक्षा करना।' रीछकी यह बात सुनकर धर्मगुप्त सो गये। उस समय सिंहने रीछसे कहा—'यह राजा तो सो गया है, अब

तुम इसे मेरे लिये नीचे गिरा दो।' तब धर्मज्ञ रीछने सिंहको उत्तर दिया—'वनचारी मृगराज! तुम धर्मको नहीं जानते। अहो! विश्वासघात करनेवाले प्राणियोंको संसारमें बड़ा कष्ट भोगना पड़ता है। मित्रद्रोहियोंका पाप दस

हजार यज्ञोंके अनुष्ठानसे भी नष्ट नहीं होता। ब्रह्महत्या आदि पापोंका तो किसी प्रकार निवारण हो सकता है, परंतु विश्वासघातियोंका पाप कोटिजन्मोंमें भी नष्ट नहीं हो सकता है। सिंह! मैं मेरुपर्वतको इस पृथ्वीका बड़ा

भारी भार नहीं मानता, संसारमें जो विश्वासघाती है, उसीको मैं भूतलका महान् भार समझता हूँ।' रीछके ऐसा कहनेपर सिंह चुप हो गया। तत्पश्चात् धर्मगुप्त जागे और रीछ वृक्षपर सो गया। तब सिंहने राजासे कहा—'इस रीछको नीचे छोड़ दो।' तब राजाने अपने अंकमें सिर रखकर सोये हुए रीछको पृथ्वीपर

ढकेल दिया। राजाके गिरानेपर रीछ वृक्षकी डाली पकड़ता लटक गया। वह पुण्यवश वृक्षसे नीचे नहीं गिरा। अब वह राजाके पास आकर क्रोधपूर्वक बोला—'राजन्! मैं इच्छानुसार रूप धारण करनेवाला

ध्यानकाष्ठ नामक मुनि हूँ। मेरा जन्म भृगुवंशमें हुआ है। मैंने स्वेच्छासे रीछका रूप धारण किया है। मैंने तुम्हारा कोई अपराध नहीं किया था। फिर सोते समय तुमने मुझे क्यों ढकेला? जाओ, मेरे शापसे बहुत शीघ्र पागल होकर पृथ्वीपर विचरो।' इस प्रकार राजाको विश्वासघातका दण्ड मिला। [स्कन्दपुराण]

भगवती सीता तथा द्रौपदीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त

धर्मध्वज और कुशध्वज—इन दोनों नरेशोंने कठिन करनेको उद्यत हुआ। रावणकी इस कुचेष्टाको देखकर

तपस्याद्वारा भगवती लक्ष्मीकी उपासना करके अपने प्रत्येक उस साध्वीका मन क्रोधसे भर गया। उसने रावणको अपने तपोबलसे इस प्रकार स्तम्भित कर दिया कि वह

अभीष्ट मनोरथको प्राप्त कर लिया। महालक्ष्मीके वर-जडवत् होकर हाथों एवं पैरोंसे निश्चेष्ट हो गया। कुछ

प्रसादसे उन्हें पुन: पृथ्वीपति होनेका सौभाग्य प्राप्त हो गया। वे दोनों धनवान् और पुत्रवान् हो गये। कुशध्वजकी भी कहने-करनेकी उसमें क्षमता नहीं रह गयी। ऐसी

भार्याका नाम मालावती था। समयानुसार उनके एक कन्या

उत्पन्न हुई, जो लक्ष्मीका अंश थी। वह भूमिपर पैर रखते ही ज्ञानसे सम्पन्न हो गयी। उस कन्याने जन्म लेते ही

स्रतिकागृहमें स्पष्ट स्वरसे वेदके मन्त्रोंका उच्चारण किया और उठकर खडी हो गयी। इसलिये विद्वान पुरुष उसे

'वेदवती' कहने लगे। उत्पन्न होते ही उस कन्याने स्नान

किया और तपस्या करनेके विचारसे वह वनकी ओर चल दी। भगवान् नारायणके चिन्तनमें तत्पर रहनेवाली उस

देवीको प्राय: सभीने रोका, परंतु उसने किसीकी भी न सुनी। वह तपस्विनी कन्या एक मन्वन्तरतक पुष्करक्षेत्रमें

तपस्या करती रही। उसका तप अत्यन्त कठिन था, तो भी लीलापूर्वक चलता रहा। अत्यन्त तपोनिष्ठ रहनेपर भी उसका शरीर हृष्ट-पुष्ट बना रहा। उसमें दुर्बलता नहीं आ

सकी। वह नवयौवनसे सम्पन्न बनी रही। एक दिन सहसा उसे स्पष्ट आकाशवाणी सुनायी पडी—'सुन्दरि! अगले जन्ममें भगवान् श्रीहरि ही तुम्हारे पति होंगे। ब्रह्मा प्रभृति

देवता भी जिनकी उपासना करते हैं, उन्हीं परम प्रभुको स्वामी बनानेका सौभाग्य तुम्हें प्राप्त होगा।'

यह आकाशवाणी सुननेके पश्चात् वह कन्या रुष्ट होकर गन्धमादनपर्वतपर चली गयी और वहाँ पहलेसे भी अधिक कठोर तप करने लगी। वहाँ चिरकालतक

तप करके विश्वस्त हो वहीं रहने लगी। एक दिन वहाँ

उसे अपने सामने दुर्निवार रावण दिखायी पड़ा। वेदवतीने अतिथि-धर्मके अनुसार पाद्य, परम स्वादिष्ट फल और

शीतल जल देकर उसका सत्कार किया। रावण बड़ा पापिष्ठ था। वह वेदवतीके समीप जा बैठा और पृछने

लगा—'कल्याणि! तुम कौन हो और क्यों यहाँ ठहरी हुई हो ?' वह देवी परम सुन्दरी थी। उस साध्वी कन्याके मुखपर मन्द मुसकानकी छटा छायी रहती थी। उसे

देखकर दुराचारी रावणका हृदय विकारसे संतप्त हो

गया। वह वेदवतीको हाथसे खींचकर उसका शृंगार

स्थितिमें उसने मन-ही-मन उस कमललोचना देवीका मानस स्तवन किया। देवी वेदवती रावणपर सन्तुष्ट हो गयी और परलोकमें उसकी स्तुतिका फल देना स्वीकार

> कर लिया। साथ ही उसे यह शाप दे दिया—'दुरात्मन्! त मेरे लिये ही अपने बन्ध-बान्धवोंके साथ कालका ग्रास बनेगा; क्योंकि तूने कामभावसे मुझे स्पर्श कर लिया है, अत: अब मैं इस शरीरको त्याग देती हूँ।'

> देवी वेदवतीने इस प्रकार कहकर वहीं योगद्वारा अपने शरीरका त्याग कर दिया। तब रावणने उसका मृत शरीर गंगामें डाल दिया और मनमें इस प्रकार चिन्ता करते हुए घरकी ओर प्रयाण किया—'अहो! मैंने यह कैसी

> अद्भुत घटना देखी। यह मैंने क्या कर डाला?'—इस प्रकार विचार करके अपने कुकृत्य और उस देवीके देहत्यागको स्मरण करके रावण बहुत विषाद करने लगा। वही देवी साध्वी वेदवती दुसरे जन्ममें जनककी कन्या हुई और उसका नाम सीता पड़ा, जिसके कारण रावणको मृत्युका मुख देखना पड़ा था। वेदवती बड़ी तपस्विनी थी। पूर्वजन्मकी

> तपस्याके प्रभावसे स्वयं भगवान् श्रीराम उसके पति हुए। ये श्रीराम साक्षात् परिपूर्णतम श्रीहरि हैं। देवी वेदवतीने घोर तपस्याके द्वारा आराधना करके इन जगदीश्वरको पतिरूपमें प्राप्त किया था। वह साक्षात् रमा थी। श्रीराम परम गुणी, समस्त सुलक्षणोंसे सम्पन्न, शान्त-स्वभाव,

रघुकुलभूषण, सत्यसंध भगवान् श्रीराम पिताके सत्यकी रक्षा करनेके लिये वनमें पधारे। वे सीता और लक्ष्मणके साथ समुद्रके समीप ठहरे थे। वहाँ ब्राह्मणरूपधारी अग्निसे उनकी भेंट हुई। भगवान् श्रीरामको देखकर विप्ररूपधारी अग्निका मन संतप्त हो उठा। तब सर्वथा सत्यवादी उन

अग्निदेवने सत्यप्रेमी भगवान् श्रीरामसे ये सत्यमय वचन

अत्यन्त कमनीय एवं श्रेष्ठतम देवता थे। वेदवतीने ऐसे

मनोऽभिलिषत स्वामीको प्राप्त किया। कुछ कालके पश्चात्

कहे—'भगवन्! मेरी कुछ प्रार्थना सुनिये। श्रीराम! यह

िभाग ९३

संख्या ११] भगवती सीता त	था द्रौपर	रीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त २९
\$	555555	
सीताके हरणका समय उपस्थित है। ये मेरी माँ हैं, इन	हें मेरे	करने लगे। पुनः सीताको खोजते हुए वे बारम्बार वनमें
संरक्षणमें रखकर आप छायामयी सीताको अपने	साथ	चक्कर लगाने लगे। कुछ समयके पश्चात् गोदावरी नदीके
रखिये, फिर अग्नि–परीक्षाके समय इन्हें मैं आपको	लौटा	तटपर उन्हें जटायुद्वारा सीताका समाचार मिला। तब वानरोंको
दूँगा। परीक्षा-लीला भी हो जायगी। इसी कार्यके	लिये	अपना सहायक बनाकर उन्होंने समुद्रमें पुल बाँधा। उसके
मुझे देवताओंने यहाँ भेजा है। मैं ब्राह्मण नहीं रू	गक्षात्	द्वारा लंकामें पहुँचकर उन रघुश्रेष्ठने अपने बाणसे बन्ध्-
अग्नि हूँ।'		बान्धवोंसहित रावणका वध कर डाला। तत्पश्चात् उन्होंने
भगवान् श्रीरामने अग्निकी बात सुनकर लक्ष्म	गणको	सीताकी अग्नि-परीक्षा करायी। अग्निदेवने उसी क्षण
बताये बिना ही व्यथित-हृदयसे अग्निके प्रस्तावको	मान	वास्तविक सीताको भगवान् श्रीरामके सामने उपस्थित कर
लिया। उन्होंने सीताको अग्निके हाथों सौंप दिया	। तब	दिया, तब छायासीताने अत्यन्त नम्र होकर अग्निदेव और
अग्निने योगबलसे मायामयी सीता प्रकट की। उसवे	ह रूप	भगवान् श्रीराम—दोनोंसे कहा—' महानुभावो ! अब मैं क्या
और गुण साक्षात् सीताके समान ही थे। अग्निदेवरं	ने उसे	करूँगी, सो बतानेकी कृपा कीजिये?'
श्रीरामको दे दिया। मायासीताको साथ ले वे आगे	बढ़े।	तब भगवान् श्रीराम और अग्निदेव बोले—'देवि!
इस गुप्त रहस्यको प्रकट करनेके लिये भगवान् श्री	रामने	तुम तप करनेके लिये अत्यन्त पुण्यप्रद पुष्करक्षेत्रमें चली
उसे मना कर दिया। यहाँतक कि लक्ष्मण भी इस रह	स्यको	जाओ। वहाँ रहकर तपस्या करना, इसके फलस्वरूप तुम्हें
नहीं जान सके, फिर दूसरेकी तो बात ही क्या है ?	? इसी	स्वर्गलक्ष्मी बननेका सुअवसर प्राप्त होगा।'
बीच भगवान् श्रीरामने एक सुवर्णमय मृग देखा। र	तीताने	भगवान् श्रीराम और अग्निदेवके वचन सुनकर छाया-
उस मृगको लानेके लिये भगवान् श्रीरामसे अनुरोध ि	केया।	सीताने पुष्करक्षेत्रमें जाकर तप आरम्भ कर दिया। उसकी
भगवान् श्रीराम उस वनमें जानकीकी रक्षाके लिये लक्ष्म		कठिन तपस्या बहुत लम्बे कालतक चलती रही। इसके
नियुक्त करके स्वयं मृगको मारनेके लिये चले। उ		पश्चात् उसे स्वर्गलक्ष्मी होनेका सौभाग्य प्राप्त हो गया।
बाणसे उसे मार गिराया। मरते समय उस माया	मृगके	समयानुसार वही छायासीता राजा द्रुपदके यहाँ यज्ञकी
मुखसे 'हा लक्ष्मण!' यह शब्द निकला। फिर	सामने	वेदीसे प्रकट हुई। इसका नाम 'द्रौपदी' पड़ा और पाँचों
श्रीरामको देख उनका स्मरण करते हुए उसने सहस	ा प्राण	पाण्डव उसके पतिदेव हुए। इस प्रकार सत्ययुगमें कुशध्वजकी
त्याग दिये। मृगका शरीर त्यागकर वह दिव्य देहसे स		कन्या वही कल्याणी वेदवती त्रेतायुगमें छायारूपसे सीता
हो गया और रत्ननिर्मित दिव्य विमानपर सवार		बनकर भगवान् श्रीरामकी सहचरी तथा द्वापरयुगमें द्रुपदकुमारी
वैकुण्ठधामको चला गया। यह मारीच पूर्वज		द्रौपदी हुई। अतएव इसे 'त्रिहायणी' कहा गया है।
वैकुण्ठधामके द्वारपर वहाँके द्वारपाल जय और विष्		जब लंकामें वास्तविक सीता भगवान् श्रीरामके
किंकर था तथा वहीं रहता था। वह बड़ा बलवान	•	पास विराजमान हो गयीं, तब रूप और यौवनसे शोभा
उसका नाम था 'जित'। सनकादिकोंके शापसे		पानेवाली छायासीताकी चिन्ताका पार न रहा। वह
विजयके साथ वह भी राक्षस-योनिमें आ गया था		भगवान् श्रीराम और अग्निदेवके आज्ञानुसार भगवान्
दिन उसका उद्धार हो गया और वह उन द्वारपालोंके	पहले	शंकरकी उपासनामें तत्पर हो गयी। पति प्राप्त करनेके
ही वैकुण्ठके द्वारपर पहुँच गया।		लिये व्यग्न होकर वह बार-बार यही प्रार्थना कर रही
तदनन्तर 'हा लक्ष्मण' इस कष्टभरे शब्दको स्	•	थी—'भगवान् त्रिलोचन! मुझे पति प्रदान कीजिये।'
सीताने लक्ष्मणको श्रीरामके पास जानेके लिये प्रेरित ि	_	यही शब्द उसके मुखसे पाँच बार निकले। भगवान्
लक्ष्मणके चले जानेपर रावण सीताका अपहरणकर		शंकर छायासीताकी यह प्रार्थना सुनकर बोले—'तुम्हें
ही-खेलमें लंकाकी ओर चल दिया। उधर लक्ष्म		पाँच पति मिलेंगे।' इस प्रकार त्रेताकी जो छायासीता
वनमें देखकर श्रीराम विषादमें डूब गये। वे उसी		थी, वही द्वापरमें द्रौपदी बनी और पाँचों पाण्डव
अपने आश्रमपर गये और सीताको वहाँ न देख ि —	त्रलाप 	उसके पति हुए।[ब्रह्मवैवर्त०, प्रकृतिखण्ड अ० १४]
		_

सत-वचनामृत (वृन्दावनके गोलोकवासी सन्त पूज्य श्रीगणेशदासजी भक्तमालीके उपदेशपरक पत्रोंसे) 🕸 जीवन्मुक्त तथा भक्तजनोंको भी गोपीभाव अलभ्य धन्य है, इसीसे सत्संग आदि नये पुण्य करके मनुष्य

आवागमनसे छुटकारा पाता है। भगवद्धामको पाता है।

है। इसे प्राप्त करनेमें जाति, आचार, ज्ञान कारण नहीं है। यह तो भगवत्कृपा, भक्तकृपाके अधीन है। कहाँ वे मानव शरीरसे भक्ति ही कर्तव्य है।

वनवासिनी, आचार-विचार, ज्ञान, उत्तम जातिसे रहित

गॅंवार गोपियाँ और कहाँ श्रीकृष्णके प्रति इनका अनन्य

प्रेम। अहो! ये धन्य हैं, धन्य हैं। इससे यही सिद्ध हुआ कि भगवानुके स्वरूपको न जानकर भी जो उनसे प्रेम

करे, उन्हें सर्वस्व अर्पण कर दे तो अपनी कृपासे प्रभु

उसका कल्याण कर देते हैं, जैसे कोई अनजाने अमृत पी ले तो वह भी अमर हो जायगा। 🔅 भगवद्धक्ति क्लेशोंका नाश करती है। अविद्या

मायाके प्रभावसे काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर होते हैं, इनके कारण जीव तामस अन्धकारमें क्लेश पाता है।

भक्ति शुभ कल्याणदात्री है, सभी प्रकारके लौकिक पारलौकिक मंगल कल्याण भक्तको प्राप्त होते हैं। भक्त संसारी आदमीकी तरह खाता-पीता और व्यवहार करता

है, पर उसके मनकी स्थिति भिन्न होती है, अत: संसारीकी और भक्तकी मानसिक स्थिति भिन्न रहती है। शान्ति

दु:खदायक मनके रोग होते हैं। उनसे बचानेवाली

भगवद्भक्ति है, वह सत्संगसे प्राप्त होती है। सन्त-भगवन्तसे कृपा करनेकी अभिलाषा करनी चाहिये।

🕏 बहुत-सी सम्पत्ति पाकर कृष्णविमुख अभक्त शान्तिको प्राप्त नहीं कर पाता है। भगवद्भक्त प्रभुकृपासे प्राप्त धनमें सन्तुष्ट रहता है और शान्तिका अनुभव

करता है। ज्ञान, भक्ति, वैराग्यका लेशमात्र इस लोकमें सुख देता है। अतः सत्संग-स्वाध्यायद्वारा उसीको प्राप्त

करनेकी इच्छा करनी चाहिये। 🕏 मानव शरीरसे ही भक्ति प्राप्त होती है। पशुको

विवेक नहीं है, वह विवश होकर श्रम करता है। पुण्योंसे प्राप्त देवशरीरसे भी भक्ति नहीं बनती है। स्वर्ग केवल

भोगभूमि है। पृथ्वीपर किये गये पुण्योंका भोग स्वर्गमें,

भक्ति प्राप्त होती है।

🕏 राधा सर्वेश्वरी ब्रजकी आराध्या हैं। उनमें

लोग श्रीरामजीका स्मरण करते हैं। श्रीरामजी भरतलालका

सौन्दर्य, माधुर्य, सौशील्य आदि दिव्य गुणोंका निवास है। 'राधा' शब्दके उच्चारणसे श्रीकृष्ण प्रसन्न होते हैं। राधाके पादारविन्दोंकी आराधनासे श्रीकृष्ण-प्रेमकी प्राप्ति

होती है। युगल-स्वरूप एक ही है। कृष्णके नामरूपमें राधा और राधाके नामरूपमें श्रीकृष्ण व्याप्त रहते हैं।

केवल लीला-रसवर्धनके लिये युगल दिव्य शरीर धारण ਧਾਸ਼ੀਜ਼ਿਰਪੀਏਆਰਾਤਵੇਂ ਨੀਰਾਤੈਵਾਰੇਬਾ ਮੁਸ਼ਿਰਾਹਰਡਾਈਰ ਵਿੱਚ ਸ਼ਾਸ਼ੀਜ਼ਰ ਵੈਂ।ਆਨੋਟੀ ਈ ਸਮੇਂ ਦਰਾਉਂਦੇ ਭਾਵ ਸ਼ਾਸ਼ੀਜ਼ਰਸ਼ਾਨ ਮਿਲ੍ਹ

निरन्तर भक्तके हृदयमें रहती है। विमुख अशान्त रहता है। 🕏 प्रभुकी कृपा ही कुशल है, शरीरसे अधिक श्रीकृष्णका दर्शन होता है।

भक्त-भगवान्से ही है, इसमें सन्देह नहीं है।

🖈 आलवन्दारके एक श्लोकका भाव यह है कि

मेरा जो कुछ है, मैं जो कुछ हूँ, वह सब आपकी ही

सम्पत्ति है। मेरी बृद्धिने यह निश्चय कर लिया है फिर अब

मेरे पास है ही क्या, जो आपको समर्पित करूँ। शुद्धा

शरणागित यही है। मनमें आश्रय अपने इष्ट देवताका ही

रखना चाहिये, अन्य कोई मेरे कार्यको सिद्ध कर दे, मेरा कल्याण कर दे—ऐसी आशा नहीं करनी है। अपना भला

गंगाकी धारा है। ब्रह्मविचार अन्त:सलिला सरस्वती हैं।

विधि-निषेध, कर्तव्य-अकर्तव्यका निर्णय ही यमुनाजी

🕯 सन्त-समाजमें, सत्संगमें, रामकी भक्ति ही

हैं। कृष्ण ही ब्रह्म हैं, उनके सम्बन्धमें उनके स्वरूपकी चर्चा सरस्वती हैं। इस त्रिवेणीमें स्नान ही प्रयाग-कुम्भ

स्नानका फल देगा। अक्षयवट विश्वास है; अपने इष्टमें, अपने धर्ममें अटल विश्वास प्रभुकृपासे बना रहे तो

समझो कि अक्षयवटकी छायामें हैं। अक्षयवटके पत्रपर बालमुकुन्द कृष्ण दर्शन देते हैं अर्थात् विश्वासमें

🕸 श्रीभरत-भाईके स्मरणसे श्रीराम प्रसन्न होते हैं। विश्वके भरण-पोषण करनेवालेका नाम भरत है। सभी

स्मरण करते हैं। भरतजीका स्मरण करनेसे श्रीरामजीकी

ईश्वराराधना और धार्मिकता क्या है? (श्रीगजाननजी पाण्डेय) प्रार्थना कैसे करें? मानसिक अथवा मौखिक रूपमें निरन्तर जप किया जाय। निम्नलिखित भजनका भाव यह है कि 'राम' के जो यह पढ़ै हनुमान चलीसा । होय सिद्धि साखी गौरीसा॥ अर्थात् प्रतिदिन पूजाके वक्त हम ईश्वरकी आराधना नामका सहारा लिया जाय— (प्रार्थना)-के रूपमें जो स्तोत्र, श्लोक अथवा चालीसा जै जै राम, जै सिया-राम, दो अक्षर का प्यारा नाम। आदि पढ़ते हैं, उसे सही उच्चारण, शब्दोंके अर्थको राम नाम के जपने से ही, बन जाते सब बिगड़े काम॥

ईश्वराराधना और धार्मिकता क्या है ?

समझकर और निहित भावोंको मनमें आत्मसात्कर पढ़ा जाय तो पूजा फलदायी होती है। इसलिये हनुमानचालीसाके उक्त पदमें साधकको उसे पढ़नेकी सलाह दी गयी है। होता यह है कि जब हम किसी पद, दोहा या अन्य धार्मिक साहित्यको पाठद्वारा बार-बार दोहराते हैं तो हमें लगता है

संख्या ११]

क्या आवश्यकता है, परंतु संस्कृत या अन्य पद्य-शैलीमें लिखे पदको बोलनेमें हमसे चुक हो सकती है। अत: उसे देखकर पढना ही युक्तिसंगत होगा। इससे हम उन शब्दोंमें निहित भावोंको सरलतासे ग्रहण कर पायेंगे। निहितार्थ यह है कि हम जिस समय जो कार्य कर

कि वह हमें याद हो गया है और अब उसे देखकर पढ़नेकी

रहे होते हैं, उसे पूरी लगन एवं श्रद्धासे पूर्ण करें तो उसमें निश्चित ही सफलता मिलती है। एकाग्रचित्तसे की गयी आराधनासे सिद्धि प्राप्त होती है। काल्डेरानके शब्दोंमें 'कोई भी सत्कार्य व्यर्थ नहीं जाता। यह एक खजानेकी तरह है, जो कर्ताकी आवश्यकताके लिये सुरक्षित रहता है।' सिसरोके शब्दोंमें 'बुद्धिमान् विवेकसे, साधारण

जीवनको सँवारता है; जो इन तीनोंको अपने जीवनमें ढाल लेता है। नाम-स्मरणका प्रभाव—ईश्वरसे प्रीति करनेका सरलतम मार्ग नित्य प्रति उनके नामका जप करना है।

मनुष्य अनुभवसे, अज्ञानी आवश्यकतासे और पशु

दूसरे शब्दोंमें सुनना, देखना और समझना उसीके

स्वभावसे सीखते हैं।'

इस सन्दर्भमें 'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥'इस सोलह

अक्षरोंके मन्त्र या 'ॐ नमः शिवाय' अथवा 'श्रीराम

जय राम जय जय राम' और जो भी प्रिय हो—उसका

क्योंकि कहा गया है कि रामसे बड़ा रामका नाम है। उनके नाममें बड़ी शक्ति है। पत्थरोंपर 'राम' नाम

लिखकर समुद्रपर सेतु बाँधा गया था। ईश्वर सब जगह हैं और वे प्रेमसे प्रकट होते हैं। 'हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम ते प्रकट होहिं मैं

जाना ॥ 'अत: नाम-स्मरणको जीवनका अंग बनाया जाय। धार्मिकता क्या है? इसके बारेमें स्वामी विवेकानन्दने कहा था-'ईश्वरका मार्ग संसार-पथके विपरीत है। ईश्वर

और कुबेरकी सिद्धि बहुत कम लोगोंको होती है। धर्म केवल शुष्क दर्शनमात्र नहीं है। व्यक्तिके पास बहुत-

सी पुस्तकें, सिद्धान्त, शब्द या तर्क हो सकते हैं परंतु धर्म नहीं होता; क्योंकि धर्म तब शुरू होता है, जब अन्तरात्माको 'प्रियतम' (प्रभु)-के लिये आवश्यकता, अभाव और व्याकुलताका बोध होने लगता है, उसके पहले कदापि नहीं।' उनके अनुसार जबतक कोई ऐसा नहीं करता, तबतक मैं उसे धार्मिक नहीं कह सकता। मनुके शब्दोंमें 'शरीर जलसे पवित्र होता है, मन सत्यसे, बुद्धि ज्ञानसे और आत्मा धर्मसे पवित्र होती है।'

मनुके उक्त कथनके अनुसार जीवन और राष्ट्र धर्मद्वारा संचालित हो। इस अर्थमें 'धर्म' शब्दका तात्पर्य यह है कि जो समाजको धारण करता है, उसीका नाम धर्म है। **'धारणात् धर्म इत्याहुः'** यानी धर्म व्यक्ति और समाजके सम्बन्धोंके निर्वाहका सूत्र देता है। गोस्वामीजीने सुख और धर्मके सम्बन्धकी ओर संकेत किया है, पर उन्होंने

धर्मका एक दूसरा फल भी बताया है-धर्मसे वैराग्य, वैराग्यसे ज्ञान और ज्ञानसे मोक्ष। अर्थात् व्यक्तिके जीवनका महत्तर लक्ष्य ईश्वरसे एकाकारता और पूर्णताको प्राप्त करना है।

भाग ९३ प्रेरक-लघुकथा— ज्योति प्रज्वलित हो गयी (श्रीबलविन्दरजी 'बालम') दर्शन एक निर्धन पिताका पुत्र था। उसका पिता हो। उसके भीतर अपने अस्तित्वकी ज्योति प्रज्वलित हो मेहनत-मजदूरी करके घरका गुजारा चला रहा था। गयी। उसके धैर्यमें हजारों-लाखों दीपक जलने लगे। दर्शन आम निर्धन लडकों-जैसा लडका था। पढाईमें वह एक रोशनी उसके हृदयसे निकलकर उसके सारे जिस्ममें औसत दर्जेका अच्छा विद्यार्थी था, परंतु सुख-सुविधाओंसे प्रसारित हो गयी। वंचित होनेकी वजहसे एवं घरकी मजबूरियोंसे पढ़ाईकी दर्शन सुबह तड़के उठा। प्रभुको याद किया। ओर ध्यान कम दे पाता था। नहा-धोकर तैयार हुआ। उसके पिताने कहा, 'अरे

दर्शनने प्लस-टू परीक्षा प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण की

थी। तत्पश्चात् उसने राज्यस्तरका इंजीनियरिंगका टेस्ट दिया। उसके पिताने बड़ी मुश्किलसे उसके लिये फीसका इन्तजाम किया था। पिताके साथ वह मेहनत-मजदूरी करने भी जाता। गाँवके धनाढ्य घरोंमें काम भी

करने चला जाता। तीन बहनोंका वह इकलौता भाई था। इंजीनियरिंगके टेस्टका परिणाम आया तो उसकी रैंक बहुत दूर थी। वह बहुत मायूस हो गया। सबने उसको कोसा, खास करके उसके पिताने उसको खूब

डॉंट-फटकार लगायी थी कि तू पढ़कर कौनसे गुल खिलायेगा। तुझे कहा भी था कि मेहनत-मजदूरी किया कर मेरे साथ, परंतु तूने हजारों रुपये बर्बाद कर दिये। इतने पढ़े-लिखे लोग धक्के खा रहे हैं, तू कौन-सा अफसर बन जाता?

दर्शनको सारी रात नींद नहीं आयी। वह चारपाईपर पडा जागता रहा और सोचता रहा कि क्या मैं भी पिताकी तरह सारी उम्र लोगोंकी मजदूरी करता रहँगा? मेरी माँ सारी उम्र लोगोंके बर्तन साफ करती रहेगी? लोगोंकी अच्छी-बुरी बातें सुनती रहेगी? बडी मुश्किलसे

घरका रोटी-ट्रक चलता है। मैं मजदूरी नहीं करूँगा। वे कौनसे लड़के हैं, जो इंजीनियरिंगमें अच्छी रैंक लाते हैं? वे भी तो मेरे ही दिमाग-जैसे हैं। क्या उनके दिमाग किसी अलग किस्मके होते हैं ? मैं क्यों अच्छी रैंक नहीं

दर्शन! सुबह-सुबह तैयार होकर कहाँ चला है? मेरे साथ चल मजदूरी करने।' दर्शनने निर्मल मनसे कह दिया, 'पिताजी! मैं आपके साथ मजदूरी करने नहीं जाऊँगा। मैं किसी

कामसे जा रहा हूँ।' यह कहकर वह घरसे निकल पड़ा और गाँवके सरपंचके घर गया। सरपंच धनाढ्य परिवारका पढा-लिखा नवयुवक था। उसकी पत्नी अच्छे घरकी शिक्षित लड़की थी। दर्शनने सरपंचसे हाथ जोडकर कहा, 'चाचा, केवल पाँच सौ रुपये उधार दे दो, मेहनत-दिहाडी करके

मैं लौटा दूँगा।' सरपंचने कहा, 'अरे दर्शन! तू पाँच सौ रुपये क्या करेगा? तू कहाँसे देगा? तेरा बाप तो दिहाड़ी-मजदूरी करता है।'

दर्शनने फिर हाथ जोड़कर सरपंचसे कहा, 'चाचा, मुझे इंजीनियरिंगका दोबारा टेस्ट देना है। हाथ जोड़कर बिनती है चाचा, पाँच सौ रुपये दे दो। मैं जरूर वापस कर दूँगा। मुझे टेस्ट देना ही है चाचाजी।' सरपंचने कहा, 'जा, जाकर अपने बापके साथ

मेहनत-मजदुरी कर। इंजीनियरिंगके टेस्टमें तू पहले ही फेल हो चुका है। अब क्या तू पास हो जायगा? उधर तेरी बहनें जवान हो रही हैं, मेहनत-मजदूरी करके उनके हाथ पीले करनेकी सोच।'

ले सका? मुझमें क्या कमी है? वह सारी रात यह परंतु दर्शनने मिन्नतके साथ हाथ जोड़ते हुए फिर सोचता रहा। उसकी नींद-जैसे पंख लगाकर उड़ गयी कहा, 'चाचा, भगवान्की कसम एक बार केवल पाँच

दर्शनके पिता बाहर आये। कारवालोंने कहा, 'दर्शनकुमार लगा लिया और कहा, 'दर्शन! गाँवका नाम रोशन कर यहाँ रहते हैं ?' उसके पिताने कहा, 'हाँ जी साब, यहाँ दिया तूने पुत्तर, जीता रह। सारे राज्यमें, देशमें नाम कर दिया है तूने।' दर्शनके हृदयकी लौने संघर्ष, शक्ति तथा ही रहता है।' इतना कहकर वह अन्दर भागा-भागा आया और दर्शनसे कहने लगा, 'अरे, क्या कारनामा विद्यासे तपस्याको सार्थक रूप दे दिया था, जिसकी रोशनीसे करके आया है तू, बड़े-बड़े लोग बड़ी-सी गाड़ीमें तुझे क्षेत्र जगमगाता रहेगा।

अनुकूलता और प्रतिकूलतामें प्रेमी भक्तकी अनुपम साधना

(श्रीभीकमचन्दजी प्रजापति)

अन्भव-आपके जीवनका यह अनुभव है कि किसी भी तरहसे इनके द्वारा वह आपको प्रेम दे। यदि

अनुकूलताको बनाना, बनाये रखना और बढ़ाना एवं मानव इनके द्वारा आपको प्रेम नहीं देता, स्वयं ही सुख

प्रतिकूलताको टालना तथा रोकना आपके वशकी बात भोगने लगता है तो आप इन सबको इससे वापस छीन

नहीं है। यदि यह आपके वशकी बात होती तो आप

लेते हैं और उसको घृणा, विपत्ति, अपयश, अपमान देते

प्रतिकूलताको आने ही नहीं देते। आप केवल यह प्रयास

कर सकते हैं कि आपके जीवनमें अनुकूलता बनी रहे

शुभ कर्मों और प्रतिकृलता अशुभ कर्मोंका फल है।

लेकिन मार्मिक बात यह है कि इन दोनोंको भगवान्

प्रेमी भक्त बनाना चाहते हैं। केवल इसीलिये वे इनको

भेजते हैं। भगवान् मानवहृदयका प्रेम चाहते हैं, वे प्रेमके

भूखे हैं, इसी बातको भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारने

कहाँ तुच्छ सब, कहाँ महत् तुम, पर यह कैसा अनुपम भाव। बने प्रेमके भूखे, सबसे प्रेम चाहते, करते चाव॥

धन देते, यश देते, देते ज्ञान-शक्ति-बल, देते मान।

किसी तरह सब तुम्हें प्रेम दें, इसीलिये सब करते दान॥

लेते छीन सभी कुछ, देते घृणा-विपत्ति, अयश-अपमान।

करते निष्ठुर चोट, चाहते, तुम्हें प्रेम सब दें, भगवान्॥

सभी ईश्वरोंके ईश्वर तुम बने विलक्षण भिक्षु महान्।

उच्च नीच सबसे ही तुम नित प्रेम चाहते प्रेम-निधान॥

अनुपम, अतुल, अनोखी कैसी अजब तुम्हारी है यह चाह।

रस समुद्र, रसके प्यासे बन, रस लेते मनभर उत्साह॥

महान्से भी महान् प्रभु! फिर भी आप प्रेमके भूखे बनकर

हे भगवान्! कहाँ तो तुच्छ प्राणी और कहाँ आप

इसका भाव इस प्रकार है-

(पद-रत्नाकर ६९)

सभीसे प्रेम चाहते हैं। आप मानवको धन, यश, ज्ञान, **'वासुदेवः सर्वमिति'** अर्थात् सब कुछ परमात्मा शक्ति, duis matter server the street of the server of the ser

निम्नलिखित पदके द्वारा बताया है—

कैसे आती है—कर्म-सिद्धान्तके अनुसार अनुकूलता

क्यों भेजते हैं -- भगवान् आपको अपना महान्

और प्रतिकुलता नहीं आये।

भेजते हैं।

अपने जीवनमें सदैव अनुकूलताको बनाये रखते और

हैं, इतना ही नहीं, एक निर्दयी व्यक्तिकी तरह उसपर

निष्ठुर चोटें मारते हैं। ऐसा करनेके पीछे भी आपकी

यही भावना रहती है कि वह आपको प्रेम दे। आप सभी ईश्वरोंके ईश्वर हो, फिर भी आप एक विलक्षण भिखारी

बन गये और उच्च-नीच सभी व्यक्तियोंसे प्रेम चाहते हैं।

यह आपकी कैसी अनुपम इच्छा है कि प्रेमरसके समुद्र

होते हुए भी आप प्रेमरसके प्यासे बनकर अत्यन्त

भेजें तो आप भगवान्को प्रेम देकर उनके प्रेमी भक्त बन जायँ।

प्रेमी भक्त बननेके लिये इस बातको भलीभाँति समझ लें—

तो मन्दिरमें या मन्दिरके बाहर। आप अपने घरमें, मन्दिरमें बैठकर ही भगवानुकी पुजा, आरती करते हैं, वहीं भोग

लगाते हैं। मन्दिरमें भगवान् हैं, चाहे वह मन्दिर आपके घरमें हो या घरके बाहर। मन्दिरके बाहर भी भगवान् हैं,

उन भगवान्का नाम है—आपके पति, पत्नी, संतान, सभी

परिवारजन, रिश्तेदार, मित्र, सभी मनुष्य, सभी प्राणी,

सम्पूर्ण संसार। लेकिन इन सबका वह रूप नहीं है, जो

मन्दिरवाले भगवानुका है। यदि आप इनमें वही रूप

देखना चाहते हैं तो इनको प्रेम दीजिये। प्रेमसे वे आपके

सामने उसी रूपमें प्रकट हो जायँगे। श्रीरामचरितमानस

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥

समानरूपसे व्यापक हैं, प्रेमसे वे केवल प्रकट हो जाते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता (७। १९)-में आया है—

अर्थात् मैं तो यह जानता हूँ कि भगवान् सब जगह

(१।१८४।५)-में आया है—

क्या करें — जब भगवान् अनुकूलता और प्रतिकूलता

दो जगह—भगवान् कहाँ हैं; इसका उत्तर है; या

उत्साहके साथ प्रेमरसका पान करते हैं।

संख्या ११] अनुकूलता और प्रतिकूलतामें	प्रेमी भक्तकी अनुपम साधना ३५
******************************	**********************************
अनुकूलतामें प्रेम देना —इसकी मुख्य बातें इस	दुःख देना है। किसीके दोष देखकर क्रोध करना
प्रकार हैं—	आँखोंसे दु:ख देना है। निन्दा सुनना कानोंसे दु:ख देना,
(१) दो रूप—अनुकूलताके दो रूप हैं। पहला	निन्दा करना, असत्य और कटु बोलना, ताना मारना
है—अनुकूल परिस्थिति, जैसे—स्वस्थ शरीर, पर्याप्त	आदि वाणीसे दु:ख देना है। अवज्ञा, अवहेलना, अनादर
आय, सुख-सुविधाएँ, सेवाभावी परिवारजन, मान-	करना आदि व्यवहारसे दु:ख देना है। दु:ख देनेवालेको
सम्मान आदि। दूसरा रूप है—परिवारजनों, मित्रों,	कई गुना ज्यादा दु:ख मिलेगा, यह प्राकृतिक विधान है।
रिश्तेदारों, सहयोगियों आदिका अच्छा व्यवहार, सबके	उसको भी दु:ख नहीं देना, जो आपको दु:ख देता है,
द्वारा सेवा आदि।	जिसमें अनेक बुराइयाँ हैं। ये दोनों करुणाके पात्र हैं,
(२) मन्दिरमें विराजमान भगवान् —अनुकूलतामें	क्रोधके नहीं। दु:ख देनेवाले और दोषीको बड़ा भारी
भगवान्को प्रेम मिलता है आपके मनकी भावनाओंसे।	नुकसान होता है। अज्ञानतावश वह अपना ही नुकसान
मनमें यह भावना रखें, ऐसा सोचें—हे भगवान्! यह	करता है। आप करुण हृदयसे उसके दोषको मिटाने और
अनुकूलता मेरी मेहनत, गुणों, शुभ कर्मींसे नहीं आयी	उसके हितके लिये उसको दण्ड दे सकते हैं। ऐसा करना
है, इसको आपने भेजा है। मैं इसके द्वारा आपके उन	तो उसकी सेवा है।
रूपोंको प्रेम दूँगा, जो मन्दिरके बाहर हैं, जैसे—शरीर,	प्रतिकूलतामें प्रेम देना —इसकी मुख्य बातें इस
परिवारजन, रिश्तेदार, मित्र, समाज, संसार। मैं अपने	प्रकार हैं—
सुखके लिये इसका उपयोग नहीं करूँगा। ऐसा नहीं	(१) दो रूप—प्रतिकूलताके दो रूप हैं—
सोचें कि इस अनुकूलताके द्वारा अब मैं विभिन्न प्रकारके	पहला—प्रतिकूल परिस्थिति, जैसे—शरीरमें असाध्य रोग
सांसारिक सुखोंका भरपूर उपभोग करूँगा। ऐसा सोचने	पैदा हो जाना, व्यापारमें घाटा लग जाना, दुर्घटना हो
और करनेसे तो आप सुखोंमें फँस जायँगे।	जाना, मृत्यु हो जाना आदि। दूसरा—प्रतिकूल व्यवहार,
(३) मन्दिरके बाहरवाले भगवान् —आपका	जैसे—परिवारजनोंके द्वारा अपमान, आलोचना, निन्दा,
शरीर, परिवारजन, सम्बन्धी, मित्र, निकट रहनेवाले सभी	तिरस्कार, लड़ाई-झगड़ा या नुकसान किया जाना।
मनुष्य, प्राणी आदि मन्दिरके बाहरवाले भगवान् हैं।	(२) दो तरहसे —आपके जीवनमें दो तरहसे
शरीरको भगवान्का रूप मानकर इसकी सेवा करें,	प्रतिकूलता आयेगी। पहली, अपने आप और दूसरी,
परिवारजनों, मित्रों आदिको भगवान्का रूप मानकर	किसीके माध्यमसे। आप पूरी सावधानीसे सड़कपर चल
सुख, सुविधा, सम्मान, प्रसन्नता दें। सबको यथाशक्ति	रहें हैं, फिर भी ठोकर लग गयी, आप गिर गये, चोट
सुख दें। यही भगवान्को प्रेम देना है, यदि वह	लग गयी। आपको पता ही नहीं चला कि मुझे चोट
अनुकूलता किसी परिवारजन अथवा अन्य व्यक्तिके	किसने लगायी। आप चल रहे हैं, किसीने जानबूझकर
माध्यमसे आयी है तो उसको भगवान्का स्वरूप मानकर	आपको धक्का दे दिया, गिर गये, चोट लग गयी। यहाँ
उससे कई गुना अधिक अनुकूलता देनेकी भावना रखें	धक्का देनेवाला आपको दीख गया। आप सोचेंगे, इसने
और यथाशक्ति दें।	मुझे चोट लगायी है।
(४) दुःख नहीं दें —शरीर, इन्द्रियाँ, मन आदिके	(३) मन्दिरमें विराजमान भगवान् —जब अपने-
द्वारा भगवान्के किसी भी रूपको कभी भी दु:ख नहीं	आप प्रतिकूलता आये तो आप मनमें यह भाव रखें या
दें, उसका अपमान नहीं करें। किसीको मन–ही–मन बुरा	सोचें कि इसको मेरे प्रभुने भेजा है और मुझे महान् प्रेमी
समझना, उसका बुरा सोचना, उससे नाराज रहना, ईर्ष्या	भक्त बनानेके लिये भेजा है। ऐसा सोचकर खूब प्रसन्न
करना, बदला लेनेकी भावना रखना आदि उसको मनसे	रहें, आनन्दित रहें। इस भावनासे भगवानुको अपार प्रेम

मिलेगा। यदि प्रतिकूलता आपकी असावधानीसे आयी (३) मन या भावनासे प्रेम देना—आपके है, जैसे स्वादवश आपने भोजन ज्यादा कर लिया, मनमें उसके प्रति हित और करुणाकी भावना रहनी आपका पेट खराब हो गया, कब्जरोग हो गया तो आप चाहिये, मनमें प्रार्थना होनी चाहिये। हित सद्भावनाका यह सोचकर खूब प्रसन्न रहें कि मेरी असावधानी स्वरूप है। उसको भरपूर सुख, सुविधा, सम्मान, मिटानेके लिये इसको मेरे प्रभुने भेजा है। यदि आपके प्रसन्तता मिले, शान्ति, मुक्ति, भक्ति मिले, भगवान्के दर्शन हो जायँ, यह है हित-भावना। वह अज्ञानतावश मनमें यह भावना आ जाय कि मैं भगवान्की इतनी पूजा करता हूँ, रोज मन्दिर जाता हूँ, फिर भी भगवान्ने मेरे भूल कर रहा है, इस भूल या बुराईका नुकसान उसीको जीवनमें इस संकटको भेज दिया, फिर पूजा करनेसे क्या होगा, वह अपना ही बुरा कर रहा है, हे भगवान्! आप लाभ? आप दु:ख, चिन्ता, अशान्ति, तनाव आदि अपनी कृपासे उसकी रक्षा कीजिये। यह है करुणा और विकारोंसे ग्रसित हो गये, भगवान्में आपका विश्वास प्रार्थना। हित-भावनाकी महिमाको श्रीरामचरितमानसमें कम हो गया। इस भावनासे भगवान्को दु:ख होगा। श्रीरामजीने बताया है-ऐसी भावना तो भगवान्पर क्रोध करना है। परिहत बस जिन्हके मन माहीं । तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं।। (४) मन्दिरके बाहरवाले भगवान्-जिस (३।३०।९) व्यक्तिके माध्यमसे प्रतिकृलता आती है अथवा जो अर्थात्, जिनके मनमें दूसरे का हित बसता है आपके साथ प्रतिकृल व्यवहार करता है, अर्थात् आपका (समाया रहता है), उनके लिये जगत्में कुछ भी (कोई अपमान, अनादर, अवहेलना, तिरस्कार, निन्दा, आलोचना भी गति) दुर्लभ नहीं है। करता है; आपको आर्थिक एवं शारीरिक नुकसान करता भगवान् रामके मनमें प्रतिकृल व्यवहार करनेवाले है; आपके साथ लड़ाई-झगड़ा करता है, वह वास्तवमें रावणके प्रति हित-भावना थी। उनकी वाणी है— मन्दिरके बाहरवाला भगवान् है। उसको प्रेम देना, काजु हमार तासु हित होई। रिपु सन करेहु बतकही सोई॥ भगवान्को प्रेम देना है। उसको प्रेम दीजिये, उसको प्रेम अर्थात् शत्रुसे वही बातचीत करना, जिससे हमारा देना, भगवान्को प्रेम देना है। अत्यन्त संक्षेपमें, उसको काम हो और उसका कल्याण हो। प्रेम देनेकी मुख्य बातें इस प्रकार हैं-(४) व्यवहारमें प्रेम देना—शान्ति और प्रेमसे (१) भावना या मनसे दुःख न देना—हर उसके साथ बातचीत करें। आपकी भाषा मधुर हो, समय, हर स्थानमें, हर परिस्थितिमें यह सच्ची बात याद विनम्रता रखें, क्रोध नहीं करें, अपनी भूलको सहर्ष रहे। ये साक्षात् भगवान् हैं। मन-ही-मन उसको बुरा स्वीकार करें, उसको समझायें, दूसरोंसे भी प्रेरणा नहीं समझें, उसका बुरा नहीं सोचें, मनमें नाराजगी, दिलवायें। उसके हितके लिये आप उसके साथ कटु ईर्ष्या, बदला लेनेकी भावना नहीं रखें। ये सब मनमें व्यवहार भी कर सकते हैं। भगवान् रामने हनुमान्जी, रहनेवाला क्रोध है। इससे सामनेवालेको बड़ा भारी दु:ख विभीषण, कुम्भकर्ण, मारीच, मन्दोदरीके द्वारा रावणको होता है। दु:खके भाव वहाँ जाते हैं। समझाया। जब वह नहीं माना तो युद्ध किया, उसको (२) व्यवहारसे दुःख न देना—उसकी निन्दा, मार दिया। मारकर उसका कल्याण कर दिया। भगवान्

साधना।

आलोचना, अपमान, उसके साथ लडाई-झगडा नहीं करें;

अपनी तरफसे बोलचाल, उसके घर आना-जाना बन्द नहीं करें। ऐसा करना क्रोध है, उसको दु:ख देना है।

ये सब बाहरका क्रोध है। क्रोधसे उसको दु:ख होगा।

भाग ९३

श्रीकृष्णने पूतनाको मृत्युदण्ड दिया, लेकिन उसी धाममें

यह है अनुकूलता-प्रतिकूलतामें प्रेमी भक्तकी अनुपम

भेजा, जिस धाममें अपनी माँ यशोदाजीको भेजा।

दोष भूलका परिणाम है संख्या ११] दोष भूलका परिणाम है प्रेरणा-पथ— (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) जबतक आप यह न स्वीकार कर लें कि व्यर्थ परीक्षा लेता है। क्या भगवान् बे-समझ है, जो परीक्षा चिन्तन भूलजनित है, सार्थक चिन्तन दैवी देन है, तबतक लेता है ? भगवान् क्या सर्वत्र नहीं है ? भगवान् क्या सर्वका ज्ञाता नहीं है? अरे! उसके तो सिखानेके आप उसे नहीं मिटा सकते। आप कहेंगे कि सार्थक चिन्तनको हम अपना पुरुषार्थ क्यों न मान लें ? भैया मेरे, अनोखे-अनोखे ढंग हैं, बाबू। वह परीक्षा-अरीक्षा कुछ सार्थक चिन्तनको यदि तुम अपना पुरुषार्थ मानोगे, तो नहीं लेता। परीक्षा लेनेकी उसे जरूरत ही क्या है। वह अभिमानमें डूब जाओगे। आपको शायद मालूम हो कि क्या अल्पज्ञ है, जो परीक्षा लेगा? और जो अल्पज्ञ है, यह साधारण बात नहीं है। प्रह्लाद-जैसे परम और प्रभु-वह भगवान् हो सकता है क्या?' विश्वासी भक्तका चरित्र देख लीजिये। प्रह्लाद साधारण तो महाराज! प्रह्लादजीको ऐसा ही मालूम हुआ कि नहीं, जिन्होंने एक घटनाके आधारपर मान लिया कि मैंने प्रभुमें विश्वास किया है, मुझे कुछ नहीं चाहिये, मैं प्रभु रक्षक हैं, और उसमें इतनी गहरी दृढ़ता कर ली कि निष्काम हूँ, मैं निर्वेर हूँ, मैं द्वेष-रहित हूँ। समस्त गुणोंका भय-जैसी चीज उनके जीवनमें रही ही नहीं। उन्होंने आभास श्रीप्रह्लादजीको अपनेमें हुआ। कथा सुनी होगी पुरुषार्थपूर्वक यह मान लिया कि मैं तो अचाह हो गया, आपने। चाहे उसे आप काल्पनिक मानें, चाहे इसे मुझे तो कुछ चाहिये नहीं। परंतु देखिये, जो हम सबका इतिहास मानें, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। बातको अपना है, वह कितना महान् है। देखिये, ईश्वरवादका समझनेके लिये निवेदन कर रहा हूँ। तो इन गुणोंका अर्थ यह नहीं है कि यदि आप ईश्वरको मानें, तब तो आभास जब श्रीप्रह्लादजीको हो गया, और फिर आगे ईश्वर है, यदि न मानें तो नहीं है। ईश्वरवादका यह अर्थ देखिये: प्रत्यक्षरूपसे उसे जलानेके लिये किसको बिठाया आप कभी न समझें और न कहें कि जो ईश्वरको नहीं था ? होलीको। किसको ? होलीको। और वे किसके पुत्र जल गये थे ? गुरु-पुत्र जल गये। और प्रह्लादने कहा था मानते, उनके लिये ईश्वर नहीं है। और जो कहें कि हम मानते हैं, वह उनकी बपौती है। यह बिलकुल झुठी बात कि अगर मेरे हृदयमें द्वेष न हो, तो गुरु-पुत्र जीवित हो है। ईश्वर तो कहते ही उसको हैं कि जिनका होना जायँ। यानी प्रत्यक्षरूपसे उन्हें द्वेष-रहित होनेका भास आपके मानने या न माननेपर निर्भर नहीं। अरे, वह भी होता है। भगवान्ने पूछा—'भैया! कुछ चाहते हो? बोले, 'नहीं, मुझे कुछ नहीं चाहिये।' बिगड़ गये। बोले, मैं कोई ईश्वर है, जो आपके न माननेपर न रहे, और जो तुम्हारे माननेपर रहे ? इसका मतलब तो हुआ कि तुम्हीं ईश्वर बनिया हूँ ? फिर भी प्रभु कहते हैं - देखिये, प्रभुकी हो गये। अगर तुम्हारे माननेसे कुछ होता है और न कृपालुता कितनी अधिक है। मैं तो कभी-कभी सोचकर माननेसे कुछ नहीं रहता, तो तुम ईश्वर हुए कि ईश्वरकी हैरान हो जाता हूँ कि यह मानव उन्हें न जाने इतना प्यारा सत्ता सिद्ध हुई? ईश्वरवादका असली अर्थ है कि वह क्यों लगता है। वे फिर भी कहते हैं—'नहीं, भैया प्रह्लाद! उसका भी उतना ही है, जो उसे मानता है और जो उसे तुम माँगो। तुम माँग लो।' प्रह्लादजीने कहा—तो अच्छा, मैं यह चाहता हूँ कि मैं कुछ न चाहूँ। आगे अब आप नहीं मानता, उसका भी वह उतना ही है। जो बलपूर्वक देखिये। मैं यह चाहता हूँ कि मैं कुछ न चाहूँ। प्रभुने कह शासन करे, उसे ईश्वर नहीं कहते। ईश्वर बलपूर्वक दिया 'एवमस्तु'। अब देखिये, गुण उसीकी देन है। जिन्हें शासन नहीं करता किसीपर। अब मैं आपसे पूछता हूँ— 'अगर ईश्वर बलपूर्वक शासन करने लगे, तो जब झुठ वह ऐसे निराले ढंगसे देता है कि लेनेवालेको मालूम ही बोलना चाहो, तब वह बोलनेकी शक्ति छीन ले, तो तुम नहीं होता कि मैंने लिया। उसकी देन है। अब प्रह्लादजीको क्या कर लोगे?' बहुतसे लोग कहते हैं कि भगवान् चेत आया और चेत आनेपर—देखिये, चेतकी पहचान

क्या है ? जिस समय अपने दोषका दर्शन हो जाय, समझ

भाग ९३

नहीं रह सकता। इसलिये मेरे भाई, जितना भी दिव्य

जीवन है, सब अनन्तकी देन है, जितना भी दोष है, सब

अपनी भूलका परिणाम है। इसी तथ्यके आधारपर दोष

भगवान् संकोचमें डूब गये। 'महाराज! यह तो बताओ कि

कैसा अनुपम उदार स्वभाव है कि तुरंत ही अपनेको पर-दोष-दर्शन हो, उस समय समझ लो कि हमारे-जैसा

कोई बेसमझ नहीं। बेसमझकी सबसे बडी पहचान है कि

अपराधी मान लिया, अपने अभिमानी भक्तके सामने।

जो पराये दोषका पण्डित हो। और भैया! विचारशीलकी

भैया! मैंने मारा तो तेरे बापको ही है। मैं आपसे पूछता

कसौटी है, कि जो अपने दोषका ज्ञाता हो। तो प्रह्लादको

दुष्कर्म पराभव, अपमान और दुःखका कारण

बनाकर लंका ले जाने लगा तो उनका मुख लज्जासे झुक गया। वे दुखी हो चिन्तामें डूबकर अपनी पराजयका कारण सोचने लगे। भगवान् ब्रह्माजीने उनकी इस अवस्थाको लक्ष्य किया और कहा—'शतक्रतो! यदि आज तुम्हें इस

और अवस्था सभी बातें एक-जैसी थीं। उनके रूप और रंग आदिमें परस्पर कोई विलक्षणता नहीं थी। तब मैं एकाग्रचित्त होकर उन प्रजाओंके विषयमें विशेषता लानेके लिये कुछ विचार करने लगा। विचारके पश्चात् उन सब प्रजाओंकी अपेक्षा विशिष्ट प्रजाको प्रस्तुत करनेके लिये मैंने एक नारीकी सृष्टि की।प्रजाओंके प्रत्येक अंगमें जो-

अपमानसे शोक और दु:ख हो रहा है तो बताओ पूर्वकालमें तुमने बड़ा भारी दुष्कर्म क्यों किया था ?'

जो अद्भुत विशिष्टता—सारभृत सौन्दर्य था, उसे मैंने उसके अंगोंमें प्रकट किया।

तपस्याविषयक सिद्धिको जानकर मैंने वह कन्या पुनः उन्हींको पत्नीरूपमें दे दी।

रावणपुत्र मेघनादद्वारा पराजित और बन्दी होकर इन्द्रका देवोचित तेज नष्ट हो गया था। जब मेघनाद उन्हें बन्दी

प्रभो! देवराज! पहले मैंने अपनी बुद्धिसे जिन प्रजाओंको उत्पन्न किया था, उन सबकी अंगकान्ति, भाषा, रूप

उन अद्भुत रूप-गुणोंसे उपलक्षित जिस नारीका मेरे द्वारा निर्माण हुआ था, उसका नाम हुआ अहल्या। मैंने धरोहरके रूपमें महर्षि गौतमके हाथमें उस कन्याको सौंप दिया। वह बहुत वर्षींतक उनके यहाँ

धर्मात्मा महामुनि गौतम उसके साथ सुखपूर्वक रहने लगे। जब अहल्या गौतमको दे दी गयी, तब देवता

इन्द्र! तुमने कृपित और कामसे पीड़ित होकर उसके साथ दुराचार किया। उस समय उन महर्षिने अपने

उन्होंने शाप देते हुए कहा—'वासव! शक्र! तुमने निर्भय होकर मेरी पत्नीके साथ दुराचारपूर्ण व्यवहार

रही। फिर गौतमने उसे मुझे लौटा दिया। महामुनि गौतमके उस महान् स्थैर्य (इन्द्रिय-संयम) तथा

निराश हो गये। तुम्हारे तो क्रोधकी सीमा न रही। तुम्हारा मन कामके अधीन हो चुका था; इसलिये तुमने

आश्रममें तुम्हें देख लिया। देवेन्द्र! इससे उन परम तेजस्वी महर्षिको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने तुम्हें शाप

किया है; इसलिये तुम युद्धमें जाकर शत्रुके हाथमें पड़ जाओगे। वासव! उस शापके ही कारण तुम शत्रुकी **कैता**तेंd**प्रहे**त्रके**ा छन्छ से एक्टर पार्स** हेन्सु हो है जिल्ला असी के कि स्वापन के कि कि स्वापन के कि स्

मुनिके आश्रमपर जाकर अग्निशिखाके समान प्रज्वलित होनेवाली उस दिव्य सुन्दरीको देखा।

अपना दोष दीख गया। कहने लगे—'प्रभृ! एक प्रश्न

करना चाहता हूँ। हे प्रभु! यह प्रश्न करना चाहूँ कि

आपकौ बैरी मेरो बाप हो, कि बाको अभिमान?' सुनकर

भगवान् सिट-पिटा गये। देखिये, प्रभुकी कृपालुता!

दे दिया।

हँ—'ममता रहते हुए कोई निष्काम रह सकता है क्या?

मिट सकते हैं।'

आपने मेरे बापको मारा कि उसके अभिमानको ?' प्रभुका लो, तुम-जैसा विचारशील कोई नहीं। और जिस समय

गोमाताद्वारा प्राणरक्षाकी दो घटनाएँ संख्या ११] गोमाताद्वारा प्राणरक्षाकी दो घटनाएँ [गोमाता स्वरूपतः पशुयोनिमें होते हुए भी दिव्य प्राणी हैं। स्वभावसे अत्यन्त सरल होते हुए भी अपने पालनेवालोंके प्रति अपराध करनेवालोंके प्रति वे अत्यन्त उग्ररूप धारण कर लेती हैं। जिस परिवारमें वे पाली जाती हैं, उस परिवारके सदस्योंकी अत्यन्त आत्मीयतापूर्वक सेवा और रक्षा करती हैं। यहाँ उनके द्वारा प्राणरक्षाकी दो घटनाएँ प्रस्तुत की जा रही हैं—सम्पादक] खिलाया जायगा। बचपना तो था ही, मैं बातोंमें आ गया गायने तालाबमें डूबनेसे बचाया और मैंने अपनी बहाद्री दिखानेके लिये मन्दिरकी घटना पुरानी है, तब मेरी उम्र सात या आठ दीवारपर चढ़कर उस साँड़के ऊपर सवारी की। कुछ सालकी रही होगी। उन दिनों मैं अपने गाँवके एक मिनटतक तो साँड़ शान्त खड़ा रहा। लेकिन कुछ स्कूलमें पढ़ रहा था। मेरे गाँवमें चालीससे पचास गायें शरारती लड़कोंने पीछेसे सॉॅंड़के पृष्ठभागमें एक धारदार थीं। गायें सुबह गाँवसे बाहर चरने चली जाती थीं। लकड़ी चुभो दी, जिससे वह उछलकर भाग पड़ा। मैं डरके मारे उसके पीठके ऊँचे डिल्ले (ककुद्)-को शामको चरवाहा गायें वापस चराकर लाता था। शामको पकड़कर चिपक गया। साँड चारों पैरोंसे कूदता हुआ गायें गाँवके तालाबमें पानी पीकर अपने-अपने घर वापस आ जाती थीं। गाँवके बाहर बडा तालाब था, श्रीशिवजीके मन्दिरके पाससे जहाँ गाँवकी गायें पानी पी जिसके दो भाग थे। एक भागका पानी गाँववालोंके रही थीं, मुझे अपने ऊपर लिये हुए धूल उड़ाता और दौड़ता हुआ आ निकला। चरवाहोंने चिल्लाते हुए मुझे पीनेके लिये था और दुसरा नहाने तथा कपडे धोनेके लिये था। बचानेके लिये एक मोटी लकड़ी लेकर साँड्को रोकना तालाबके बराबर बीचमें दससे बारह फुटकी चाहा। लेकिन साँड रुका नहीं। उसने सीधा रास्ता सीमेंटकी दीवार थी, जो लोगोंके और जानवरोंके आने-बदला और वह तेजीसे दौड़ता हुआ दोनों तालाबके बीचके रास्तेमें भागने लगा। भयके मारे मेरा बुरा हाल जानेका भी काम देती थी। एक दिन शामको पाँच बजे स्कूल छूटनेके बाद था। आँखोंके सामने अँधेरा छा गया था। मुझे लगा कि हम आठ-दस बच्चे गाँवके श्रीराम-मन्दिरके पास खेल अब बचना मुश्किल है। आँखें बन्दकर साँड़के डिल्लेको रहे थे। उतनेमें गाँवका एक साँड़ मन्दिरके पाससे कसकर पकड़कर मैं चिपका हुआ था। साँड़के साथ मैं निकला। आज वह गायोंके साथ न रहकर पहले ही भी उछल रहा था। प्रभू-प्रेरणासे मैंने आँखें खोलकर गाँवमें आ गया था। वह रातभर मन्दिरके सामने पड़ा सामने देखा तो मेरे दोनों तरफ तालाबका पानी लहरा रहता था और सुबह सब गायोंके साथ वह भी गाँवके रहा था। मैंने आव देखा न ताव और साँड्की पीठ छोडकर उछलकर तालाबके पानीमें प्राण बचाने कुदा,

बाहर मैदानमें शामतक चरने चला जाता था। हम इस शान्त स्वभावके साँड्के साथ खूब खेल करते थे। कोई

कान तो कोई पूँछ खींच देता था। लेकिन साँड् केवल

अपनी सींग हिलाकर ही रह जाता था। हम जरा भी

जो इस साँड्के ऊपर बैठकर सवारी करेगा, उसे खजूर

एक दिनकी बात है। एक बच्चेने शर्त लगायी कि

इससे डरते नहीं थे।

और छपाकसे गहरे पानीमें आ गिरा। तैरना आता नहीं था, डूबने लगा। एक पलको तो ऐसा लगा कि तालाबके पानीसे तो साँडुकी पीठ ही अच्छी थी। गाँववाले, ग्वाला-चरवाहा और मेरे मित्र लडके अभी मुझसे काफी दूरीपर थे। मैं थोड़ा पानी पी गया

और एक बार पानीके ऊपर आया। फिर डूबा। खूब

भाग ९३ हाथ-पैर हिलाये, तब दूसरी बार पानीसे ऊपर आया। क्षेत्रमें अपहरण तथा डकैतियाँ पड़ती रहती हैं। ऐसे ही चारों ओर पानी-ही-पानी नजर आया। आखिर तीसरी एक रात थोड़ा अँधेरा होते ही डकैत हमारे गाँवमें घुस बार मैं थककर हिम्मत हारकर गहरे पानीमें डूबने लगा। आये और हमारे मकानसे थोड़ी ही दूरपर पड़ोसके एक तब मेरे शरीरसे किसी लम्बी-चौड़ी लकड़ी-जैसी व्यक्तिको मारने-पीटने लगे। जब मार-पीटका शोरगुल चीजका धक्का लगा और मोटी रस्सी-जैसी चीज सुनायी दिया तो मेरे पिताजी भी यह देखने चले गये कि हिलती हुई नजर आयी। मैंने वह मोटी रस्सी-जैसी चीज किससे झगड़ा हो रहा है। वे 'शान्त रहो, शान्त रहो, दोनों हाथसे जोरसे पकड़कर थोड़ा श्वास लेनेकी क्या बात है, कौन है ?' ऐसा कहते हुए जा रहे थे। किंतु कोशिश की। लेकिन स्वच्छ हवाके बदले पानी ही पिताजीको यह बात समझनेमें देर न लगी कि गाँवमें पीनेको मिला। तब हरिकृपासे उस मोटी रस्सी, जिसे मैंने डकैत घुस आये हैं, आहट पाकर डकैत भी सावधान कसकर पकड रखा था, के सहारे मैं तालाबके किनारे हो गये। पिताजीको पकडने उसी तरफ दौड आये। आ पहुँचा। मैंने आश्चर्यसे देखा तो जिसे मैं रस्सी समझ पिताजी बड़ी तेजीसे लौटकर घरकी ओर भागे, किंतु रहा था, वह गायकी पूँछ थी और जिस लकड़ी-जैसी माताजीने डरके मारे घरके किंवाड बन्द कर लिये थे। चीजने मुझे धक्का मारा था, वह गायके पैर थे। डकैत घरमें घुस आयेंगे-इस आशयसे पिताजीने घरके में आधी बेहोशीकी हालतमें तालाबके किनारेपर दरवाजे खुलवाये नहीं, किंतु अब वे जायँ तो कहाँ जायँ, आ गया था और वहीं बैठकर उलटी करने लगा। डाकुओंका भय बना हुआ था। सौभाग्यसे हमारी पशुशालाके किंवाड़ खुले हुए गौमाता जिसने मुझे पानीमें डूबनेसे बचाया था, मेरी पीठ,

हाथ तथा मुँह चाट रही थी। तब मुझे होश आया कि यह गाय तो हमारी खुदकी गाय है, जिसे मैं रोज प्रेमसे सहलाता था और कभी-कभी फल तथा शाक-भाजीके

बचे हुए टुकड़े खिलाया करता था। कभी-कभी गाजर और घास भी खिला देता था। इस घटनाके बाद मेरा पूज्य-भाव गौमाताके प्रति बढ़ गया। घर आकर गायकी आरती उतारी गयी और साथ ही उसे मिष्टान्न खिलाया गया। तबसे जबतक मैं गाँवमें रहा, रोज सुबह गायकी एक बार जरूर पीठ सहलाया करता था और रोटी अपने

हाथसे खिलाया करता था। - वनराज एम० चावरा (२)

गोमाताने की जीवन-रक्षा घटना लगभग बीस-इक्कीस वर्ष पुरानी है, तब

मेरी उम्र पन्द्रह-सोलह वर्षकी रही होगी। हमारा गाँव बुन्देलखण्डके पठारी-भागमें स्थित है, जिसके तीन ओर बीहड़ जंगल है। यह बदमाश तथा डाकुओंके छिपनेके

लिये प्राकृतिक सुरक्षा प्रदान करता है और आये दिन इस

तुड़ाकर डकैतोंको मारनेके लिये दौड़ीं। डकैत गायोंसे डरकर हमारी पशुशालासे बाहरकी ओर भागे, पिताजीको भाग निकलनेका मौका मिल चुका था। वे बच गये। यदि गायें हमारी पशुशालामें न होतीं तो डकैतोंद्वारा

थे। पिताजी उसी पशुशालाकी ओर भागे और उसीमें

घुस गये। पिताजीका पीछा करते हुए डकैत भी वहीं आ

पहुँचे, किंतु जैसे ही डकैतोंको गायोंने देखा, जो संख्यामें

तीन थीं और एक ही वंशकी थीं, अपना-अपना बन्धन

हमारे पिताजीकी क्या दुर्दशा होती, इसकी कल्पना

करके हम सब आज भी काँप जाते हैं। गायोंने ही उस दिन पिताजीकी रक्षा की थी और सारे गाँवको लूट जानेसे बचा लिया। इसलिये हमारा प्रत्येक भारतीयसे

विनम्र निवेदन है कि वह अपने परिवारमें कम-से-कम

एक गाय अवश्य रखे और उसकी माताकी तरह ही देखभाल तथा रक्षा करे। समय आनेपर गाय उसकी

सेवासे प्रसन्न होकर उसका लोक-परलोक अवश्य सुधार देगी, ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है।—मधुसूदन तिवारी

औघड़ बाबा श्रीशंकर स्वामी संत-चरित

औघड बाबा श्रीशंकर स्वामी

लगभग अस्सी वर्षसे ऊपरकी बात है। एक

संख्या ११]

(श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट) पक गया तब उतारकर खा लिया। मल-मूत्रकी हाजत

था ? उसकी जाति क्या थी—आदि बातोंका तो कुछ पता नहीं। इन बातोंसे होता ही क्या है? संत तो सारे संसारकी सम्पत्ति होते हैं। न तो उनकी कोई जाति होती

चालीस वर्षसे अधिक अवस्थावाला मस्त फकीर काशीमें

आ डटा। वह कहाँ पैदा हुआ था, उसका क्या नाम

है और न कोई कुल। हमें इन सब व्यर्थ बातोंमें अपना सर खपानेकी कोई जरूरत नहीं। उससे कोई लाभ भी

अत्यन्त ही उच्चकोटिका महात्मा था। वह न तो किसीसे कुछ माँगता ही था, न किसीसे कुछ बातचीत ही करता था। दशाश्वमेधपर एक मकानकी बाहरी पटियापर वह

तो नहीं है। हाँ, इतनी बात निर्विवाद है कि वह एक

सदा पड़ा रहता था। किसीने कुछ मुँहमें ठूँस दिया तो

बदनपर डाल दिया तो, नहीं तो जाड़ा, गर्मी, बरसात सभी यों ही दिगम्बरावस्थामें बीतती थीं। आटा, दाल,

खा लिया, नहीं तो कुछ परवा नहीं। किसीने कोई कपडा

चावल, घी, नमक, मिठाई, साग, बेसन—जो भी कुछ

आ गया—हण्डीमें डालकर आगपर चढ़ा दिया गया। कुछ सीख सकते हैं।

एक-दो दिन नहीं, लगातार-जबसे वह काशी आया था. तबसे अन्ततक—लोगोंने उसे तपस्या करते देखा। जिस मकानकी पटियापर आप पड़े रहते थे, वह मकान जब गिरा तो आपकी ओर न गिरकर और तीन

तरफसे गिरा। उससे अन्य तमाम लोगोंको तो चोट आयी, पर आपपर एक कंकडी भी न गिरी। बरसातके दिनोंमें मूसलाधार वर्षा होती रहती थी, पर आपकी हण्डीके नीचे जलनेवाली आग जलती ही रहा करती

पड़नेपर सड़कपर खड़े होकर त्याग दिया। इसी प्रकार

थी। आपकी खिचडी मैदानमें पकती रहती थी, यह तो तमाम लोगोंकी आँखों देखी बात है। शहरके तथा बाहरके अनेकों बडे-बडे व्यक्ति आपकी सेवा करते रहते थे। कहना व्यर्थ है कि आपकी सेवासे अनेकों

आप ३० मार्च १९३७ ई० को चार बजकर

व्यक्तियोंकी मनोकामनाएँ सफल हुईं।

पैंतालीस मिनटपर अकस्मात् उठकर बैठ गये और उसी समय आपने बैठे-बैठे ही शरीर त्याग दिया। लोग देखते ही रह गये। घण्टी बजते ही खिलाड़ी पर्देसे हट गया। आप कितने उच्च कोटिके संत थे-इस बातका पता तो लोगोंको आपके भण्डारेके दिन दिनांक ११

अप्रैल १९३७ को तब चला, जबकि उन्होंने हजारों व्यक्तियोंकी भीड़में तुलसीघाटके परम पूज्य श्रीहरिहरबाबाको बैठे देखा। श्रीहरिहरबाबा एक अत्यन्त ही उच्च कोटिके महात्मा थे। आप गंगाजीमें नौकापर ही सदैव दिगम्बर

रहा करते थे, पर उस दिन वे भी नौकासे उतरकर

भण्डारेमें आकर सम्मिलित हुए थे। आपने जीवनमें न तो किसीको शिष्य ही बनाया और न किसीको कुछ उपदेश ही दिया। आपके मौन आचरणसे ही हम बहुत

साधनोपयोगी पत्र (१) राक्षसकुल ऐसा अधम कुल नहीं है, जहाँ भक्तराजका अतिप्रश्न जन्म लेना उचित न माना जाय। अलकापुरीके अधीश्वर

उत्तरदिशाके दिक्पाल राजाधिराज कुबेर भी राक्षसकुलके

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। धन्यवाद। आपके प्रश्नोंका उत्तर इस प्रकार है— ही रत्न हैं। महर्षि पुलस्त्यके पुत्र महर्षि विश्रवा थे, उनके ही पुत्रोंकी परम्परा राक्षसकुल कहलायी। रावणको—

(१) भगवान्को किसने उत्पन्न किया? यह

अतिप्रश्न है। जो प्रश्न उठानेयोग्य न हो, उसे उठाना 'अतिप्रश्न' करना है। यह प्रश्नकर्ताके लिये हानिकर

होता है। भगवान् अजन्मा, अविनाशी, नित्य एवं सनातन हैं। उन्हींसे सबकी उत्पत्ति होती है। उनकी कभी

किसीसे उत्पत्ति नहीं होती। जो वस्तु सदा मौजूद रहनेवाली है, उसकी उत्पत्ति किससे हो सकती है!

दोहावलीमें उनके निम्नलिखित दो दोहे हैं-जिससे सबकी उत्पत्ति, पालन और संहारकार्य होते हैं तथा जो किसी दूसरेसे उत्पन्न न होकर सदा विद्यमान

रहता है, वही भगवान् है। (२) सृष्टिरचना भगवानुका एक खेल है। अनन्त महासागरके वक्षस्पर युग-युगसे जो अनन्त लहरें उठती

और विलीन होती रहती हैं, उनमें वायुदेवके विभ्रम-विलासके सिवा और क्या कारण हो सकता है? इन उत्ताल तरंगोंके उत्थान और लयका क्या उद्देश्य है?

कौन कह सकता है? यदि कहें भगवान्की वह लीला किस कामकी, जिसमें असंख्य जीव कष्ट भोगते रहते

हैं ? तो इसका उत्तर यह है कि मनुष्य अपने ही काम, क्रोध, लोभ आदि दुर्गुणोंसे प्रेरित होकर जो शुभाशुभ कर्म करता है, उसीके फलस्वरूप सुख-दु:ख भोगता

है। जो इन दुर्गुणोंसे बचकर राग-द्वेष, दर्प-अहंकार आदिसे दूर रहता है, वह दु:खका भागी नहीं होता। दु:ख भी अज्ञानवश ही है, वास्तवमें नहीं। शेष भगवत्कृपा। (२)

शंका-समाधान

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र

मिला। आपके प्रश्नोंके उत्तर इस प्रकार हैं— (१) भक्तराज विभीषण राक्षसकुलमें कैसे हो गये? यह प्रश्न ठीक नहीं है। विभीषण राक्षसकुलमें

होगा।' इस प्रकार अपने पिताके शापसे ही अष्टावक्र मुनि आठ अंगोंसे टेढ़े हुए थे।

उन दिनों राजा जनकके यहाँ बन्दी नामसे प्रसिद्ध एक विद्वान ब्राह्मण आये थे। वे शास्त्रार्थ करते थे।

उन्होंने राजासे यह शर्त करा ली थी कि 'मैं शास्त्रार्थमें

जिसे हरा दूँ, उसे पानीमें डुबो दिया जाय; यही उसकी पराजयका दण्ड है। यदि मैं हार जाऊँ तो मुझे भी वैसा

पहिंगार्वहुर्ग्हणुन्ति। spart serving https://dasc.ga/dharmand MAPE, WEH सुजोताक हरू अर्था के बक्त प्रिति

(दोहा० १४२-१४३)

िभाग ९३

'उत्तम कुल पुलस्त्य कर नाती।' कहा गया है।

रावणने अपने अन्यायपूर्ण आचरणसे उस कुलकी प्रतिष्ठा

इसका प्रमाण स्वयं गोस्वामी तुलसीदासजीका वचन है।

जेहि सरीर रित राम सों सोइ आदरिहं सुजान।

रुद्रदेह तजि नेहबस बानर भे हनुमान॥

जानि राम सेवा सरस समुझि करब अनुमान।

पुरषा ते सेवक भए हर ते भे हनुमान॥

महर्षि उद्दालकके शिष्य थे। उद्दालकने उनकी सेवासे

प्रसन्न होकर उन्हें शीघ्र ही सब वेदोंका ज्ञान करा दिया

और अपनी कन्या सुजाताका ब्याह भी कहोडके साथ

कर दिया। सुजाता गर्भवती हुई। वह गर्भ अग्निके समान

तेजस्वी था। एक दिन कहोड वेदपाठ कर रहे थे। इतनेमें

अपनी माँके गर्भमें स्थित बालकने कहा—'पिताजी!

मन्त्र-पाठ शुद्ध नहीं हो रहा है!' कहोडको अपमान

मालूम हुआ। उन्होंने शाप दे दिया—'तू अभीसे टेढ़ी बात बोलता है। इसलिये आठ अंगोंसे टेढ़ा ही उत्पन्न

(३) अष्टावक्रमुनिके पिताका नाम कहोड था। वे

(२) हनुमान्जी भगवान् शंकरके अवतार थे;

घटा दी। अन्यथा वह अत्यन्त श्रेष्ठ कुल है।

साधनोपयोगी पत्र संख्या ११] धन लानेके लिये राजाके यहाँ गये। वहाँ बन्दीसे है। ज्ञान और आनन्दमें नामका अन्तर है, वस्तु एक है। शास्त्रार्थ हुआ। कहोड हार गये और उन्हें पानीमें डुबो (६) जैसे घण्टा बजानेके बाद देरतक अनुरणन होता रहता है; उसी प्रकार 'ॐ' के 'अ उ म्' के उच्चारणके दिया गया। जब अष्टावक्र कुछ बड़े हुए तो एक दिन मातासे उन्हें पिताकी पराजयका समाचार ज्ञात हुआ। बाद जो एक अविच्छिन्न ध्विन होती है, उसीका नाम फिर तो वे राजाके दरबारमें गये और बन्दीको स्वयं 'नाद' है। यह ॐकारका ही एक अवयव है। शास्त्रार्थमें पराजित किया। उस समय बन्दीने कहा—'में (७) आवागमन केवल सूक्ष्मशरीरयुक्त जीवका वरुणका पुत्र हूँ। मेरे पिता यज्ञ कर रहे हैं, उसीमें बारह होता है। वास्तवमें समस्त कर्म-संस्कार सूक्ष्म शरीरमें ही ब्राह्मणोंकी आवश्यकता थी। मैंने चुने हुए बारह विद्वान् संचित रहते हैं। यह प्रकृतिमें स्थित पुरुष या जीवात्मा ब्राह्मणोंको पानीमें डुबोनेके बहाने यज्ञमें भेजा है, वे लोग ही आता है, जाता है, शरीरान्तर ग्रहण करता है। सूक्ष्म अब आते ही होंगे।' यह कहकर बन्दी स्वयं जलमें कूद शरीरका आश्रय लेकर ही जीव विषय-सेवन आदि पड़ा। वे बारह ब्राह्मण तत्काल वहाँ आ गये। कहोड करता है। यह जीव क्या है? सर्वत्र व्यापक चेतन परमात्माका जो अंश सूक्ष्म शरीरमें आत्माभिमान कर अपने पुत्रपर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अष्टावक्रको समंगा नदीमें नहलाकर उनके सब अंग सीधे कर दिये। लेता है, वही उस शरीरका जीव कहलाता है। सद्गुरुकी यह कथा महाभारत-वनपर्वमें आयी है। वाणी और भगवान्की दयासे विवेक जाग्रत् होनेपर जब (४) संसारमें तीन अवस्थाएँ देखी जाती हैं— यह अभिमान मिट जाता है, तब नित्य मुक्तस्वरूप चेतन जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति। जागते हुए हम जो कुछ अपने ब्रह्मभावमें ही स्थित हो जाता है, उस शरीरसे देखते, सुनते या व्यवहार करते हैं, वह जाग्रत्-अवस्थाके अपना सम्बन्ध नहीं मानता। इसीको मोक्ष कहते हैं। अन्तर्गत है। सो जानेपर हम स्वप्नमें जो कुछ देखते-सुनते चेतन आश्रयसे परित्यक्त होनेपर वह सूक्ष्म शरीर उसीमें व्यवहार करते हैं, वह सब स्वप्नावस्था है। अत्यन्त गाढ़ लीन हो जाता है; यही अज्ञान अथवा लिंगशरीरका नाश है। जो जीव मुक्त नहीं हैं, वे उस सूक्ष्म शरीरको ही निद्रामें जब मनकी वृत्तियाँ सुप्त हो जाती हैं और जीव अचेत होकर सोता है, वह सुषुप्ति-अवस्था है। इन तीन अपना स्वरूप मानकर उसके जन्म लेनेपर अपना जन्म अवस्थाओंसे जीव बँधा हुआ है। ईश्वर इन तीनोंसे मुक्त मानते हैं, उसके आवागमनको अपना आवागमन समझते है। वही तुरीय-अवस्था (चौथी दशा)-में है। मुक्त पुरुष हैं और उसीके सुख-दु:खको अपना सुख-दु:ख मानते भी ब्रह्म-साक्षात्कार करके इसी अवस्थामें स्थित होते हैं। रहते हैं। इसीसे जीवका आवागमन और जन्मान्तर माना इन तीनकी अपेक्षासे उसे तुरीय (चतुर्थ) कहते हैं; जाता है। वस्तुत: चेतन आत्मा तो नित्य एवं व्यापक है। वास्तवमें वह सहज-अवस्था है। वही यथार्थ है। वह स्वयं नहीं आता-जाता। स्थूल शरीरसे सूक्ष्म (५) ब्रह्मानन्द अपना स्वरूपभूत आनन्द ही है। शरीरका वियोग ही 'मृत्यु' कहलाता है और सूक्ष्म जब जीवभाव निवृत्त होकर तत्त्वज्ञ महात्मा अपनेको शरीरका दूसरे नवीन स्थूल शरीरको ग्रहण करना ही ब्रह्मस्वरूप या ब्रह्मसे अभिन्न अनुभव करने लगता है, 'जन्म' है। चेतन आत्माका जन्म या मरण होता ही नहीं तब अपने स्वरूपभृत चिन्मय आनन्दमें उसकी स्थिति है। वह अजन्मा है, अतएव अविनाशी भी है। सूक्ष्म-होती है। वहाँ ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेयकी त्रिपुटी नहीं शरीराभिमानी जीव ही यातनादेह पाकर नरकके कष्ट होती। ज्ञेय आनन्द तो जड़ देता है। ब्रह्मानन्द ज्ञेय नहीं, भोगता है। अथवा देव-देह धारण करके स्वर्गके भोग ज्ञानरूप ही है। वहाँ ज्ञाता नहीं है। जिसे हम अनुभव भोगता है। पाप-पुण्य सब यह जीव ही करता है। स्थूल करनेवाला या जाननेवाला कहते हैं, वह भी ज्ञानरूप ही शरीर तो यन्त्र या साधनमात्र है। शेष भगवत्कृपा

वतोत्सव-पर्व

बुध

गुरु

शक्र

शनि

रवि

सोम

मंगल

बुध

गुरु

शक्र

शनि

रवि

वार

बुध

गुरु

शुक्र

शनि

रवि

सोम

मंगल

बुध

गुरु

शुक्र

शनि

सोम

मंगल

बुध

गुरु

प्रतिपदा रात्रिमें ७। ४४ बजेतक

द्वितीया,,७।५३ बजेतक

तृतीया ,, ७।३२ बजेतक

चतुर्थी " ६।४१ बजेतक

पंचमी सायं ५।२४ बजेतक

षष्ठी दिनमें ३।४७ बजेतक

सप्तमी " १।५० बजेतक ।

अष्टमी" ११।४१ बजेतक

दशमी प्रात: ७।२ बजेतक

द्वादशी रात्रिमें २। २४ बजेतक

त्रयोदशी <table-cell-rows> १२ ।१८ बजेतक

अमावस्या 🗤 ८ ।५७ बजेतक

तिथि

प्रतिपदा रात्रिमें ७।५० बजेतक

द्वितीया,, ७।९ बजेतक

तृतीया ,, ६।५६ बजेतक

चतुर्थी ,, ७।१५ बजेतक

पंचमी ,, ८।७ बजेतक

षष्ठी .. ९। २६ बजेतक

सप्तमी ,, ११।९ बजेतक

अष्टमी ,, १।९ बजेतक

नवमी ,, ३।२० बजेतक

दशमी रात्रिशेष ५ । २८ बजेतक

एकादशी प्रात: ७।२३ बजेतक रिव

द्वादशी दिनमें ९।१३ बजेतक

त्रयोदशी ,, १०।९ बजेतक

चतुर्दशी ,, १०।५० बजेतक

पूर्णिमा ,, १०।५८ बजेतक

एकादशी अहोरात्र

चतुर्दशी " १०।२७ बजेतक सोम

नवमी "९।२३ बजेतक

सं० २०७६, शक १९४१, सन् २०१९, सूर्य दक्षिणायन, शरद-हेमन्त-ऋतु, मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष

तिथि वार नक्षत्र दिनांक

स्वाती ,, ११।९ बजेतक

मंगल विशाखा ,, १०।५ बजेतक

नक्षत्र

अनुराधा दिनमें ९।२८ बजेतक

ज्येष्ठा ,, ९। ११ बजेतक

पु० षा० ,, १०।०६ बजेतक

उ०षा० ,, ११। १९बजेतक

श्रवण ,, १२।५९ बजेतक

धनिष्ठा ,, ३।५ बजेतक

शतभिषा सायं ५। २८ बजेतक

पु०भा० रात्रिमें ८।५ बजेतक

उ०भा० ,, १०।४० बजेतक

अश्विनी ,, ३।१८ बजेतक

भरणी ,, १।१ बजेतक

रोहिणी अहोरात्र

कृत्तिका रात्रिशेष ६।१९ बजेतक

रोहिणी प्रात: ७।६ बजेतक

रेवती ,, १।६ बजेतक

मुल ,, ९। २५ बजेतक

कृत्तिका रात्रिमें १०।५५ बजेतक

१३ नवम्बर

रोहिणी ,, ११।३५ बजेतक १४ "

मृगशिरा ,, ११।४६ बजेतक भद्रा प्रात: ७। ४३ बजेसे रात्रिमें ७। ३२ बजेतक, संकष्टी श्रीगणेशचत्र्थीव्रत, १५ ,,

चन्द्रोदय रात्रिमें ७। ३१ बजे, मिथुनराशि दिनमें ११। ४१ बजेसे। १६ ,,

आर्द्रा ,, ११। २९ बजेतक

पुनर्वसु ,, १०।४६ बजेतक कर्कराशि सायं ४।५७ बजेसे, वृश्चिकका सूर्य दिनमें १२।३४ बजे, १७ ,,

पुष्य ,, ९।४४ बजेतक 26 11

हेमन्तऋत् प्रारम्भ।

१९ ,,

२० ,,

भद्रा दिनमें ३।४७ बजेसे रात्रिमें २।४९ बजेतक, मूल रात्रिमें ९।४४ बजेसे। सिंहराशि रात्रिमें ८। २५ बजेतक।

२१ ,,

आश्लेषा ,, ८। २५ बजेतक मघा ,, ६।५५ बजेतक पु०फा० सायं ५।१६ बजेतक उ०फा० दिनमें ३।३५ बजेतक

हस्त ,, १।५६ बजेतक

चित्रा ,, १२। २६ बजेतक

२२ ,, 73 " 28 " २५ ,,

दिनांक

२७ नवम्बर

२८ ,,

२९ ,,

30 ,,

१ दिसम्बर

२ ,,

3 ,,

8 ,,

ξ,,

9 ,,

6 11

9 ,,

१० ,,

११ ,,

१२ ,,

२६ ,,

राशिका सूर्य प्रात: ८। २४ बजे। भौमवती अमावास्या। सं० २०७६, शक १९४१, सन् २०१९, सूर्य दक्षिणायन, हेमन्त-ऋतु, मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष

मुल दिनमें ९। २८ बजेसे।

धनुराशि दिनमें ९।११ बजेसे।

मल दिनमें ९। २५ बजेतक।

भद्रा दिनमें १२। ९ बजेतक।

मुल रात्रिमें १०।४० बजेसे।

समाप्त रात्रिमें १।६ बजे।

वृषराशि दिनमें ११।२० बजेसे।

सोमप्रदोषव्रत।

एकादशीव्रत (सबका), श्रीगीता-जयन्ती।

मिथुनराशि रात्रिमें ७।१४ बजेसे, पुर्णिमा।

मीनराशि दिनमें १। २६ बजेसे।

श्रीराम-विवाह।

भद्रा रात्रिमें १२।१८ बजेसे, प्रदोषव्रत। भद्रा दिनमें ११। २३ बजेतक, वृश्चिकराशि रात्रिमें १०। ३७ बजेसे।

मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि

भद्रा प्रात: ७। ६ बजेसे रात्रिमें ७। १५ बजेतक, मकरराशि

कुम्भराशि रात्रिमें २।२ बजेसे, पंचकारम्भ रात्रिमें २।२ बजे।

भद्रा रात्रिमें ११।९ बजेसे, ज्येष्ठाका सूर्य दिनमें १०।४७ बजे।

भद्रा रात्रिमें ६। २६ बजेसे, मेषराशि रात्रिमें १। ६ बजेसे, पंचक

मूल रात्रिमें ३।१८ बजेतक, भद्रा प्रात: ७। २३ बजेतक, मोक्षदा

भद्रा दिनमें १०।५० बजेसे रात्रिमें १०।५४ बजेतक, व्रत-पृणिमा।

सायं ४।२४ बजेसे, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।

मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि

अनुराधाका सूर्य रात्रिमें ६।३७ बजे, मूल रात्रिमें ६।५५ बजेतक। भद्रा रात्रिमें ८।१२ बजेसे. कन्याराशि रात्रिमें १०।५० बजेसे। भद्रा प्रातः ७। २ बजेतक, उत्पना एकादशीव्रत (स्मार्त्त)। तुलाराशि रात्रिमें १।१२ बजेसे, एकादशीवृत (वैष्णव), सायन धनु-

वतोत्पव-पर्व संख्या ११]

व्रतोत्सव-पर्व

१४ "

१५ ,,

१६ ,,

१७ ,,

१८ ,,

१९ ,,

२० ,,

२१ ,,

२२ ,,

२३ ,,

28 "

२५ ,,

२६ ,,

बजेतक।

सं० २०७६, शक १९४१, सन् २०१९, सूर्य दक्षिणायन, हेमन्त-ऋतु, पौष कृष्णपक्ष

तिथि नक्षत्र दिनांक १३ दिसम्बर

प्रतिपदा दिनमें १०। ३७ बजेतक शुक्र मृगशिरा प्रात: ७। २४ बजेतक द्वितीया,, ९।४६ बजेतक

शनि आर्द्रा ,, ७। १२ बजेतक रवि पुष्य रात्रिशेष ५ । ३८ बजेतक

तृतीया ,, ८।२९ बजेतक चतुर्थी प्रातः ६ ।५२ बजेतक सोम

आश्लेषा रात्रिमें ४।२१ बजेतक षष्ठी रात्रिमें २ ।४७ बजेतक मंगल सप्तमी" १२।२९ बजेतक

मघा रात्रिमें २।५३ बजेतक पु०फा० ,, १।१७ बजेतक बुध अष्टमी 🔈 १० ।७ बजेतक 📗 गुरु

उ०फा० ,, ११।३६ बजेतक हस्त ,, ९।५७ बजेतक शुक्र

नवमी " ७।४६ बजेतक चित्रा ,, ८। २५ बजेतक स्वाती ,, ७।३ बजेतक रवि

दशमी सायं ५ । ३२ बजेतक । शनि एकादशी दिनमें ३।२८ बजेतक विशाखा सायं ५ ।५८ बजेतक सोम

द्वादशी 🕖 १ ।३९ बजेतक त्रयोदशी ,, १२ । ११ बजेतक मिंगल अनुराधा ,, ५।१४ बजेतक

ज्येष्ठा ,, ४।५२ बजेतक बुध

चतुर्दशी 🛷 ११।५ बजेतक 🖡

अमावस्या 🗤 १० । २७ बजेतक 🛮 गुरु ,, ४।५७ बजेतक मूल

सं० २०७६, शक १९४१, सन् २०१९-२०२०, सूर्य दक्षिणायन, हेमन्त-ऋतु, पौष शुक्लपक्ष तिथि वार नक्षत्र

प्रतिपदादिनमें १०।१७ बजेतक शुक्र

द्वितीया,, १०।३९ बजेतक शिन तृतीया ,, ११।३५ बजेतक रवि

चतुर्थी ,, १२।५६ बजेतक सोम धिनिष्ठा ,, १०।१४ बजेतक

मंगल शतभिषा ,, १२।३५ बजेतक पंचमी ,, २।४२ बजेतक षष्ठी सायं ४।४३ बजेतक पु०भा०,, ३।८ बजेतक बुध

उ०भा० रात्रिशेष ५ । ४५ बजेतक गुरु रेवती अहोरात्र शुक्र

रेवती दिनमें ८।१५ बजेतक शनि

रवि

सप्तमी रात्रिमें ६ ।५३ बजेतक अष्टमी ,, ९।० बजेतक

नवमी ,, १० ।५५ बजेतक

एकादशी ,, १ ।३५ बजेतक भरणी ,, १२।३० बजेतक सोम

बुध

गुरु

शुक्र

द्वादशी ,, २।१४ बजेतक

त्रयोदशी ,, २।२० बजेतक

चतुर्दशी ,, १।५५ बजेतक

पूर्णिमा ,, १।२ बजेतक

दशमी ,, १२।३० बजेतक अश्वनी ,, १०।३० बजेतक

श्रवण रात्रिमें ८।१३ बजेतक

मंगल कृत्तिका दिनमें १।४५ बजे

रोहिणी ,, २।४१ बजेतक

मृगशिरा ,, ३।४ बजेतक

आर्द्रा ,, २।५९ बजेतक

पू० षा० सायं ५। ३३बजेतक उ०षा० रात्रिमें ६। ३९बजेतक

दिनांक

२७ दिसम्बर

30 11

३१ "

१ जनवरी

٦,,

3 ,,

8 ,,

٤,,

ξ,,

9 ,,

6 11

٧,,

१० 11

मकरराशि रात्रिमें ११।४९ बजेसे। २८ ,,

२९ ,, भद्रा रात्रिमें १२। १६ बजेसे, वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, पू०षा०

भद्रा दिनमें १२।५६ बजेतक, कुम्भराशि दिनमें ९।१३ बजेसे, पंचकारम्भ

कूर्मद्वादशी।

दिनमें ९।१३ बजे।

मीनराशि रात्रिमें ८। २९ बजेसे, सन् २०२० प्रारम्भ।

भद्रा रात्रिमें ६।५३ बजेसे, मूल रात्रिशेष ५।४५ बजेसे। भद्रा प्रातः ७।५७ बजेतक। मेषराशि दिनमें ८।१५ बजेसे, पंचक समाप्त दिनमें ८।१५ बजे।

मूल दिनमें १०।३० बजेतक।

भद्रा रात्रिमें १।५५ बजेसे।

रात्रिमें ६।४२ बजे, पुत्रदा एकादशीवृत (सबका)।

मिथुनराशि रात्रिमें २। ५३ बजेसे, प्रदोषव्रत।

भद्रा दिनमें १। २९ बजेतक, पौषी पृणिमा।

भद्रा दिनमें १। ३ बजेसे रात्रिमें १। ३५ बजेतक, वृषराशि

का सूर्य रात्रिमें १। ३५ बजे।

मुल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि

भद्रा रात्रिमें ९।८ बजेसे, कर्कराशि रात्रिमें १२।२९ बजेसे।

श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिशेष ८।१८ बजे।

वृश्चिकराशि दिनमें १२।१५ बजेसे, सोमप्रदोषव्रत।

धनुराशि, सायं ४। ५२ बजेसे, श्राद्धकी अमावस्या।

मूल सायं ४।५७ बजेतक, अमावस्या, सूर्यग्रहण प्रारम्भ दिनमें ८।०

मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि

भद्रा दिनमें १। ३८ बजेतक।

कन्याराशि प्रातः ६।५२ बजेसे।

भद्रा रात्रिशेष ५। ३९ बजेसे।

बजे, मोक्ष दिनमें १। ३६ बजे।

मुल रात्रिमें २।५३ बजेतक, भद्रा रात्रिमें २।४७ बजेसे।

भद्रा दिनमें ८। २९ बजेतक, मुल रात्रिशेष, ५। ३८ बजेसे, संकष्टी

सिंहराशि रात्रिमें ४। २१ बजेसे, धनुसंक्रान्ति रात्रिमें १२। ३७ बजे, खरमासारम्भ।

भद्रा सायं ५।३२ बजेतक, तुलाराशि दिनमें ९।११ बजेसे। सफला एकादशीव्रत (सबका), सायन मकरका सूर्य रात्रिमें ७।१७ बजे। मुल सायं ५।१४ बजेसे, भद्रा दिनमें १२।११ बजेसे रात्रिमें ११।३८

कृपानुभूति 'महामृत्युंजय-मन्त्रकी शक्ति'

घटनाके विवरणसे पूर्व मैं यह बताना आवश्यक

समझता हूँ कि मैं कोई विशेष पूजा-पाठ तो नहीं करता हूँ, लेकिन ईश्वरमें अटल विश्वास और श्रद्धा अवश्य रखता हूँ। मैं जब भी अकेला होता हूँ या खाली होता हूँ तो महामृत्युंजय-मन्त्रका मन-ही-मन पाठ करता रहता हूँ। यह प्रक्रिया सुबहसे ही शुरू हो जाती है और सोनेसे पहलेतक चलती रहती है।

४६

यह घटना ३० अप्रैल २०१५ ई० की है। उस दिन रात्रिको ११ बजेके बाद मैं गहरी निद्रामें था। जैसा कि रातमें तीन–साढ़े–तीनके आसपास लघुशंकाके लिये मेरी आँख खुलती है। उस दिन भी ऐसा ही हुआ। मैं बिस्तरसे उठकर शौचालयतक गया। अन्दर जाकर मैंने अनुभव किया कि वहाँपर मेरे शरीरका कुछ अंश मेरे शरीरसे बाहर हो गया, जिसका रंग सफेद और हलका चमकीला था।

उसकी चमक इतनी थी, जितनी चाँदमें होती है। उस चमकके शरीरसे अलग होते ही उसके ऊपर भी कृत्रिम शरीरका क्षणिक आवरण आ गया और मुझे ऐसा लगा जैसे वहाँपर दो अशोककुमार गुप्ता हो गये। दोनों ही शौचालयके अन्दर थे। इस कृत्रिम शरीरने वास्तविक शरीरको देखा, जो मूर्तिके समान संज्ञाशुन्य और चेतनाशुन्य हो चुका था, लेकिन कृत्रिम शरीर अर्थात् आत्मा अभी पूर्व

शरीरके सम्पर्कमें थी तथा कुछ क्षणोंके लिये पूर्व शरीरसे सम्बन्धित विचार भी आये। उस क्षणिक अवसरपर कृत्रिम शरीरस्थ आत्मामें दो ही विचार आये— (१) आज अपना जीवन पूर्ण हो गया। (२) प्रभु! आपने कुछ जल्दी कर दी, कुछ दिन

और ठहर जाते, आज ही मेरी बेटीको जर्मनी जाना है। मेरी वजहसे उसका सारा प्रोग्राम खराब हो जायगा। सुबह पाँच बजे जर्मनीके लिये फ्लाइट थी। इतना कुछ

वास्तवमें मेरी बेटी प्रीतिकी १ मई २०१५ की क्षणोंमें ही हो गया। उसके बाद कृत्रिम शरीर भी चेतनाशन्य हो गया।

हाँ, एक बातका उल्लेख करना मैं आवश्यक समझता

अंश उपस्थित थे, वह भारविहीन था। इस कृत्रिम शरीरके चेतनाशून्य होनेके बाद मुझे कुछ नहीं पता, क्या हुआ? १ मई २०१५ ई० की सुबह ६ बजे जब मेरी आँख खुली तो मैंने अनुभव किया कि मैं ठीक हूँ। अब मेरे

सामने एक प्रश्न पहाड़का रूप लेकर खड़ा हो गया कि में अपने बिस्तरतक कैसे आया? बिस्तरपर किस स्थितिमें लेटा? यद्यपि दोबारा सोनेके लिये भी कुछ मिनटका समय लगता है, लेकिन उस दिन ऐसा नहीं

हुआ। उस दिन मुझे कोई दैवी शक्ति शौचालयसे

मैंने जो कुछ ऊपर लिखा है, वह वास्तविक घटना

बिस्तरतक लायी तथा बिस्तरपर बिना एक क्षण गवाँये, मैं निद्रा कहूँ या चिरनिद्रा कहूँ, उसकी गोदमें समा गया। वास्तवमें रातको तीन या साढ़े तीन बजे मैं शौचालयके लिये उठा था, लेकिन उपर्युक्त घटना होनेपर मैं बिना मुत्रत्याग किये ही कैसे वापस आया और कैसे दोबारा निद्रामें खोया, अब मैं इस विषयपर सोचता हूँ

तो असम्भव-सा लगता है।

है और इसका स्वप्न या कल्पनासे कोई सम्बन्ध नहीं है। हाँ, उपर्युक्त घटनासे मैंने कुछ निष्कर्ष निकाले हैं, जो निम्न प्रकार हैं— (१) आत्माको शरीरसे निकलनेमें एक क्षणसे भी

कम समय लगता है। (२) कुछ पलके लिये आत्मामें भी सांसारिक चेतना बनी रहती है और स्मरणशक्ति भी रहती है,

क्योंकि उसका पूर्व शरीरसे क्षणिक सम्बन्ध बना रहता है। उसके बादकी स्थिति होती है—'सन्नाटा'।

(३) आत्माको मात्र ऐसा अनुभव होता है कि उसके पास भी शरीर है, वास्तवमें ऐसा होता नहीं है।

(४) शायद आत्मामें अपना कोई भार नहीं होता होगा, वह भारविहीन ही होती है। शास्त्रोंके अनुसार जन्म और मृत्युके समय असह्य

कष्ट होता है, परंतु मुझे ऐसी अनुभूति नहीं हुई, इसे मैं महामृत्युंजयमन्त्रकी ही शक्ति मानता हूँ, जिसका मैं

पढो, समझो और करो संख्या ११] पढ़ो, समझो और करो पहुँचा दें। मैं थोड़े दिन तुम्हारे बाबूजीकी सेवा करके उन्हें (१) सती सावित्री साथ लेकर फिर आ जाऊँगी।' श्रीमद्देवीभागवतके नवम स्कन्ध एवं महाभारतके शामको जब मैं विश्वविद्यालयसे आया तो यह बात वनपर्वमें वर्णित सती सावित्रीकी कथा भारतीय वाङ्मयकी मेरे पासतक पहुँची। मैंने नाराज होकर कहा—'माँ कोई अमर कथा है, जिसमें सावित्री अपने सतीत्वके बलपर मृत डॉक्टर नहीं हैं। वहाँपर भैया लोग पिताजीकी दवा करा पतिका जीवन यमराजसे वापस प्राप्त कर लेती है। भारतीय रहे होंगे, वे जल्दी ठीक हो जायँगे। मेरा बार-बार दिल्लीसे जन-जीवनमें प्राय: ऐसे उदाहरण आते हैं, जब पत्नी इलाहाबाद और इलाहाबादसे दिल्ली आना-जाना नहीं स्वेच्छासे प्रार्थनापूर्वक अपना जीवन मृत्युको अर्पित कर हो सकता।' देती है और बदलेमें मृत अथवा मृत-प्राय पतिको जीवित यह सुनकर माँ उदास हो गयीं और पिताजीके कर लेती है। यह घटना भी ऐसी ही कथा है। स्वस्थ होनेके लिये मन-ही-मन भगवान्को सुमिरने यह घटना सन् १९७५की है। उन दिनों मैं लगीं। संयोगसे तीसरे ही दिन मेरा एक भतीजा उमेश दिल्ली विश्वविद्यालयमें रसायन विभागमें लेक्चरर था किसी कामसे दिल्ली आ गया। माँ बहुत खुश हो गयीं तथा मुझसे बोलीं—'भैया! अब तुम्हें नहीं जाना पड़ेगा। और सपत्नीक दिल्लीके मॉडल टाउन इलाकेमें किरायेके मकानमें रहता था। हमारे गाँवका परिवार बहुत बड़ा था। मैं उमेशके साथ गाँव चली जाऊँगी?' माँ और पिताजी परिवारके साथ गाँवमें ही रहते थे। गाँवमें मैंने खुशीसे सहमित दे दी और माँके गाँव जानेकी तैयारियाँ होने लगीं। मेरी पत्नीने बाजार जाकर मॉॅंके किंचित् अस्वस्थ होनेकी जानकारी हमें मिली। मेरी पत्नीने इच्छा जतायी कि मैं माँको दिल्ली ले आऊँ तो वे मॉॅंके लिये एक नया बक्सा खरीदा। मॉॅंके लिये कई जोड़े माँकी खुब सेवा करेंगी। उनका प्रस्ताव मुझे भी अच्छा कपड़े खरीदकर उस बक्सेमें रखा। उनके चाय पीनेके लगा और मैं गाँव जाकर बीमार माँको दिल्ली ले आया। लिये एक सेट कप-प्लेट, एक किलो चायकी पत्तीका में तो दिनभर विश्वविद्यालयमें अपने शोध-कार्यमें व्यस्त पैकेट तथा दो किलो चीनी आदि सामान भी उसी बक्सेमें रहता था तथा मेरी पत्नी जी-भरकर माँकी सेवा करती रख दिया। पत्नीने माँके बाल गूँथकर उन्हें आलता-थी। माँ खुब स्वस्थ हो गयीं। अब उन्हें चलनेमें छड़ीके महावर तथा नेल-पालिश आदिसे सजाया। दिल्ली-हावड़ा सहारेकी जरूरत नहीं पडती थी और तीसरी मंजिलके जनता एक्सप्रेसमें दो सीटें आरक्षित करा दी गयीं। हम हमारे आवाससे वे स्वयं ही बिना किसी सहारेके सीढ़ियाँ दोनों माँको छोडने स्टेशन गये। उतरकर मेरी पत्नीके साथ बाजारतक जाने लगी थीं। माँ हम लोगोंके साथ छ: महीनेतक रही थीं। हमारी पत्नीके प्रति उनके मनमें बहुत प्रेम भर गया था। मेरे गाँवके मेरे बचपनके एक मित्र दिल्ली आये। वे हम लोगोंसे मिलने हमारे आवास आ गये। मॉॅंने उनसे यों भी मैं उनका सबसे छोटा बेटा था और हम लोगोंके कोई सन्तान भी नहीं थी, इसलिये भी माँ हम लोगोंको घर-गाँवका समाचार पूछा। उन्होंने सारा समाचार बताते-बताते मेरे पिताजीके किंचित् अस्वस्थ होनेकी बात भी छोटे बच्चे-जैसा मानकर प्रेम करती थीं। डिब्बेमें बैठे-बता दी। माँके माथेपर चिन्ताकी लकीरें खिंच गयीं। माँने बैठे माँ भी रो रही थीं तथा डिब्बेकी खिड्कीके पास मेरी पत्नीसे कहा—'बहु! मेरे जीवनको धिक्कार है। मैं खड़े होकर हम दोनों भी रो रहे थे। माँने अपनी बहुको ढाँढस बँधाया—'रो मत। मैं गाँवमें १५ दिनसे ज्यादा यहाँ अच्छा-अच्छा खा-पहन रही हूँ और वहाँ तुम्हारे बाबूजी बीमार चल रहे हैं। पता नहीं, उनकी ठीकसे सेवा नहीं रहूँगी और तुम्हारे बाबूजीको लेकर जल्दी ही फिर भी हो रही है या नहीं। भैयासे कहो, मुझे एक बार गाँव तुम्हारे पास आ जाऊँगी।'

भाग ९३ गाडी सरकने लगी। देखते-देखते माँ हम लोगोंकी नहीं होना चाहिये. मेरे सामने यह चले जायँगे. यह कैसे आँखोंसे ओझल हो गयीं। हम उदास मनसे स्टेशनसे होगा ? भगवान्! इनका सारा मर्ज हमें दे दो, इन्हें ठीक लौटे और दूसरे दिन-से फिर वही विश्वविद्यालयमें कर दो, इनकी जगह हमें ले लो।' रिसर्चकी दिनचर्या प्रारम्भ हो गयी। मुश्किलसे १५ दिन पिताजी उठकर खाटपर बैठ गये। माँकी ओर निहारे, बीते होंगे कि मुझे घरसे तार आया—'माँ नहीं रहीं, मुसकराये और बोले—'तुम तो बहुत सजधजकर आयी जल्दी आ जाओ।' हो, ऐसा तो गवनेमें भी नहीं सजी थीं। लगता है छोटे बहू-बेटेने खूब सेवा की है।' मॉॅंने कोई उत्तर नहीं दिया। तार पढ़कर मुझे चक्कर आ गया। साथमें मेरा भतीजा सुरेश था। उसने मुझे सँभाला। हम दोनों घर वह तो मन-ही-मन कुछ और ही प्रार्थना कर रही थीं। पहुँचे। मेरी पत्नी हम दोनोंको रोता देखकर कुछ समझ माँको बुखार चढ आया। पिताजीकी खाटके नहीं पा रही थीं। रोते-रोते मैंने उनसे तुरंत तैयार होकर घर बगलमें ही जमीनपर माँका बिस्तर लगा। पिताजी अच्छे चलनेको कहा। न मैं, न मेरा भतीजा उन्हें माँका समाचार होने लगे, माँका बुखार बढ़ने लगा। कोई दवा काम नहीं बतानेकी हिम्मत जुटा पा रहे थे। हम लोगोंको जो पहली आयी। संयोगसे मझले भैया कलकत्तेसे घर आये थे। वे गाडी इलाहाबादकी मिली, उससे चलकर इलाहाबाद पहुँचे। कलकत्ता लौटनेके लिये माँसे अनुमित माँग रहे थे। माँने उन्हें एक दिन और रुकनेको कहा और अगले दिन शरीर रास्तेभर मेरी पत्नी रोते-रोते कहती जाती थी—'यह तार सही नहीं है, भगवान् ऐसा नहीं करेंगे।' छोड दिया। माँके दोनों बडे बेटे उनकी आँखोंके सामने 'माँ नहीं रहीं' इस बातपर हम तीनों तबतक थे और दोनों छोटे परदेशमें थे। जो कुछ हो रहा था, विश्वास नहीं किये, जबतक गाँव नहीं पहुँच गये। घर वह माँको दीख रहा था। उनकी अपनी मरजीसे हो रहा पहुँचकर जो दृश्य देखा, वह असहनीय था। पिताजी था। पिताको पूर्ण स्वस्थ हुआ जानकर माँ अति प्रसन्न गुमसुम बैठे थे। बडे भैयाके हाथमें छूरी-लोटा था। वे भावसे ऊपर गयीं। मेरी ओर देखकर जोर-जोरसे रोने लगे और कहने पूरा गाँव उमड़ पड़ा था मेरी माँके अन्तिम लगे—'गोविन्द! में तुम्हारी अमानतकी रखवाली नहीं दर्शनको। सभीके आँखोंमें आँसू थे और होठोंपर ये कर सका भैया। तुमने माँको किस हालमें घर भेजा था शब्द—'वाह री सावित्री, धन्य हो।' वैसे तो मेरी माँका नाम अनूपा था, अनूपा देवी। और यहाँ क्या हो गया, तुम्हें कैसे बताऊँ?' और सचमुच वहाँ जो कुछ हुआ, उसपर वही पर ऊपर जाते-जाते वे सावित्री बन गयी थीं। अपने विश्वास कर सकता था, जिसने देखा हो। बतानेपर पतिको मौतके मुँहसे बाहर खींच लानेवाली सती सावित्री।—प्रो० कृष्ण बिहारी पाण्डेय किसीको विश्वास नहीं हो सकता। वह ईश्वरीय घटना थी, अकल्पनीय घटना थी। मेरी मॉॅंने पिताजीकी बीमारी (२) माँगकर अपने ऊपर ले ली थी और पिताजीको अपना कर्तव्यपरायणता जीवन देकर स्वयं चली गयी थीं। उन दिनों उज्जैनमें महाराज सज्जनसिंहका राज्य घरके लोगोंने बताया कि 'माँ जैसे ही घर पहुँचीं था। महाराजा बडे ही न्यायप्रिय एवं प्रजारंजक थे। चारों बीमार पिताजीकी खाटके पास गयीं तथा हाथ जोडकर ओर उनकी ख्याति थी। भगवान्की ओर निहारा, प्रणाम किया और पिताजीकी रियासतके एक विशेष कार्यालयमें श्रीश्रीनिवास खाटके सात चक्कर लगाये। बाहर आकर गंगाजी गयीं। नामके एक वरिष्ठ अधिकारी थे। वे ईमानदारी और गंगा-स्नान किया, एक लोटा गंगाजल लाकर नीमवाली सज्जनताके लिये प्रख्यात थे। स्वभाव उनका बडा सरल देवीमाँको चढ़ाया और फिर पिताजीकी खाटके पास था। आजके जीवनमें सरलता गुण नहीं, दोष समझा आकर बोलीं—'हे देवी माँ! यह क्या हो रहा है, ऐसा जाता है। कार्यालयके अफसर बडे ही चतुर और

संख्या ११] पढ़ो, समझ	
<u> </u>	
चालाक थे। श्रीश्रीनिवासजीकी सरलताका उन्होंने दुरुपयोग	आँसू टपकने लगे। उपस्थित अनेकों व्यक्तियोंकी आँखें
करना चाहा। उन्होंने खर्चके झूठे कागजात तैयार किये	गीली हो गयीं। विरोधी पक्षके लोग भी अवाक् और
और धोखेसे श्रीश्रीनिवासजीसे उनपर हस्ताक्षर करवा लिये। श्रीश्रीनिवासजी अपने अधीनस्थ कर्मचारियोंपर	स्तब्ध रह गये। इजलास (कचहरीका कार्य) बंद हो गया। न्यायाधीश महोदय अपने घर आ गये और उन्होंने
ालया त्रात्रानिवासणा अपन अवानस्य कमचारियापर विश्वास करते थे। अतएव उन्होंने खर्चके सम्बन्धमें	अपने पदसे त्यागपत्र लिखकर फैसलेके साथ ही
	महाराजके पास भेज दिया।
पूछताछ नहीं की। सरकारी कोषसे एक बड़ी रकम कर्मचारियोंके हाथ आ गयी। किंतु अपराध छिपा नहीं	महाराजक पास मजा दिया। महाराज फैसलेको पढ़कर मुग्ध हो गये। उन्होंने
कमचारियाक हाय आ गया। किंतु अपराय छिपा नहा रहता। दूसरे विभागके कुछ लोगोंको इसकी गन्ध लग	न्यायाधीश शिवशक्तिको उनकी कर्तव्यपरायणताके लिये
रहता। दूसर विमानक कुछ लानाका इसका नन्व लग गयी। उन्होंने महाराजसे उसकी शिकायत कर दी।	बधाई दी और उन्हें अपने पदपर बने रहनेका आदेश
गया। उन्होन महाराजस उसका शिकायत कर दा। महाराज श्रीश्रीनिवासजीकी ईमानदारीसे परिचित	बवाइ दा आर उन्हें अपने पदपर बन रहनका आदश दिया। अपने विशेषाधिकारसे महाराज सज्जनसिंहने निर्दोष
थे। फिर भी शासनकी व्यवस्था बनाये रखनेके लिये	श्रीश्रीनिवासजीको सजासे मुक्त कर दिया।
उन्होंने उस मामलेकी जाँचका आदेश दिया।	(३)
श्रीश्रीनिवासजीके हस्ताक्षरसे ही रकम पास हुई	शत्रुओंसे भी अधिक हानिकारक है—
थी, अतएव वे ही मुख्य अपराधी ठहराये गये।	अनुचित आहार-विहार
उज्जैनमें न्यायाधीशके पदपर थे श्रीशिवशक्ति। वे	आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें लिखा है कि कुष्ठरोगवाला
श्रीश्रीनिवासजीके पुत्र थे। पिताकी भाँति श्रीशिवशक्ति	व्यक्ति यदि दूध और मूलीका सेवन एकसाथ करता है,
भी अपनी ईमानदारी एवं कर्तव्यपरायणताके लिये प्रसिद्ध	आमवातका रोगी यदि शीतल जल पीता है, पेटदर्दका
थे। न्यायाधीश श्रीशिवशक्तिके समक्ष मुकदमा पेश	रोगी यदि दाल अधिक खाता है, प्रमेहका रोगी यदि
हुआ। दोनों ओरसे सबूत पेश किये गये। श्रीश्रीनिवासजीने	चिकनायी एवं द्रव (तरल) भोजन अधिक करता है,
भी मुलजिमके रूपमें उपस्थित होकर बड़ी ही धीरताके	अति दुर्बल व्यक्ति यदि काम-वासनासे ओत-प्रोत रहता
साथ अपने बयान दिये।	है, क्षारीय, नमकीन एवं खट्टे पदार्थींका सेवन अधिक
फैसलेका दिन आया। राज्यके कर्मचारी एवं	करता है, क्षयरोगी यदि अधिक परिश्रम करता है,
नागरिकोंमें बड़ा कौतूहल था कि देखें न्यायाधीश	गलेका रोगी यदि दिनमें सोता है तो उसके रोग बहुत
श्रीशिवशक्ति अपने पिताके मामलेमें क्या निर्णय देते हैं।	बढ़ जाते हैं।
योग्य पिताके योग्य पुत्रने अपने पदकी गरिमा एवं	इसी तरह वर्षा ऋतुमें जो व्यक्ति छोटे तालाबोंका
न्यायाधीशके कर्तव्यको ध्यानमें रखते हुए निर्णय दिया—	पानी पीता है, शरद् ऋतुमें चरपरे, खट्टे और गर्म
'मुलज्ञिमके हस्ताक्षरके अनुसार, जिन्हें वह स्वयं भी	तासीरवाली वस्तुएँ तथा दहीका सेवन करता है, हेमन्त
स्वीकार करता है, उसे अपराधी घोषित किया जाता है	ऋतुमें दिनमें सोता है, शिशिर ऋतुमें शीतल जलसे
और उस अपराधके लिये उसको छ: महीनेकी कड़ी	स्नान करता हैं, वसन्त ऋतुमें व्यायाम न कर
सजा तथा पाँच सौ रुपयेका जुर्माना किया जाता है।'	आरामतलबीका जीवन व्यतीत करता है, ग्रीष्म ऋतुमें
फैसला सुनाते ही न्यायाधीश श्रीशिवशक्ति अपनी	कामासक्त अधिक रहता है, उसे किसी शत्रुकी
कुर्सीसे उठे और पिताके समीप आकर उनके चरणोंपर	आवश्यकता नहीं होती, अर्थात् उसकी हरकतें ही
गिरकर क्षमा-याचना करते हुए सुबक-सुबककर रोने	उसके स्वास्थ्यके नाशके लिये पर्याप्त होती हैं।
लगे। पिताका हृदय भी भर आया। उनके नेत्रोंसे भी	—प्रो० अनूपकुमार गक्खड़
	

मनन करने योग्य

कुन्तीद्वारा जेठ-जेठानीकी आदर्श सेवा

कुन्तीदेवीका जीवन शुरूसे अन्ततक बड़ा ही उन्हें जो उत्तर दिया, वह हृदयमें अंकित करनेयोग्य

वनवास एवं अज्ञातवासके समय ये उनसे अलग हस्तिनापुरमें पर-हाथ रखकर न बैठे रहो, क्षत्रियोचित पुरुषार्थको त्यागकर अपमानपूर्ण जीवन न व्यतीत करो, शक्ति ही रहीं और वहींसे इन्होंने अपने पुत्रोंके लिये अपने भतीजे भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा क्षत्रियधर्मपर डटे रहनेका सन्देश रहते अपने न्यायोचित अधिकारसे सदाके लिये हाथ भेजा। इन्होंने विदुला और संजयका दृष्टान्त देकर बड़े ही न धो बैठो—इसीलिये मैंने तुमलोगोंको युद्धके लिये मार्मिक शब्दोंमें उन्हें कहला भेजा कि 'पुत्रो! जिस उकसाया था, अपने सुखकी इच्छासे ऐसा नहीं किया था। मुझे राज्य-सुख भोगनेकी इच्छा नहीं है। मैं तो कार्यके लिये क्षत्राणियाँ पुत्र उत्पन्न करती हैं, उस कार्यके करनेका समय आ गया है। इस समय तुमलोग मेरे दूधको अब तपके द्वारा पतिलोकमें जाना चाहती हूँ। इसलिये न लजाना।' महाभारत-युद्धके समय भी ये वहीं रहीं और अपने वनवासी जेठ-जेठानीकी सेवामें रहकर मैं अपना

त्यागपूर्ण, तपस्यामय और अनासक्त था। पाण्डवोंके

जेठ-जेठानीकी सेवाका भार अपने ऊपर ले लिया और द्वेष एवं अभिमानरहित होकर उनकी सेवामें अपना समय बिताने लगीं। यहाँतक कि जब वे दोनों युधिष्ठिरसे अनुमति लेकर वन जाने लगे, उस समय ये चुपचाप उनके संग हो लीं और युधिष्ठिर आदिके समझानेपर भी अपने दृढ़ निश्चयसे विचलित नहीं हुईं। जीवनभर दु:ख और क्लेश भोगनेके बाद जब सुखके दिन आये, उस समय भी सांसारिक सुखभोगको ठुकराकर स्वेच्छासे त्याग, तपस्या एवं सेवामय जीवन स्वीकार करना कुन्तीदेवी-जैसी पवित्र आत्माका ही काम था। जिन जेठ-जेठानी और उनके पुत्रों तथा आत्मीयजनोंसे उन्हें तथा उनके पुत्रों एवं पुत्रवधुओंको कष्ट, अपमान एवं अत्याचारके अतिरिक्त कुछ नहीं मिला, उन जेठ-जेठानीके लिये इतना त्याग संसारमें कहाँ

कुन्तीदेवीको वन जाते समय भीमसेनने समझाया

कि 'माता! यदि तुम्हें अन्तमें यही करना था तो फिर नाहक हमलोगोंके द्वारा इतना नर-संहार क्यों

करवाया? हमारे वनवासी पिताकी मृत्युके बाद हमें

देखनेको मिलता है।

युद्ध-समाप्तिके बाद जब धर्मराज युधिष्ठिर सम्राट्के

पदपर अभिषिक्त हुए और इन्हें राजमाता बननेका सौभाग्य

प्राप्त हुआ, उस समय इन्होंने पुत्रवियोगसे दुखी अपने

हुए अपने परिजनोंको सुख दो।' इस प्रकार अपने पुत्रोंको समझा-बुझाकर कुन्तीदेवी अपने जेठ-जेठानीके साथ वनमें चली गयीं और अन्त-समयतक उनकी

है। वे बोर्ली—'बेटा! तुमलोग कायर बनकर हाथ-

शेष जीवन तपमें ही बिताऊँगी। तुमलोग सुखपूर्वक

घर लौट जाओ और धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते

सेवामें रहकर उन्हींके साथ दावाग्निमें जलकर योगियोंकी भाँति शरीर छोड़ दिया। कुन्तीदेवी-जैसी आदर्श महिलाएँ वामांति तपाडमें । क्राइंटलार्सा इंटिंग्स्क्रम । स्कुछ। / कुछ। बुंब्री वेत्रसम्बद्ध । स्मित्रसम्भागे । स्

Milia-

श्रीगीता-जयन्ती [८ दिसम्बर, २०१९ ई०]

यो मां पश्यित सर्वत्र सर्वं च मिय पश्यित । तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यित ॥
सर्वभूतिस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः । सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मिय वर्तते॥ (गीता ६। ३०-३१)
'जो पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें सबके आत्मरूप मुझ वासुदेवको ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतोंको मुझ
वासुदेवके अन्तर्गत देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता। जो पुरुष

वासुदवक अन्तर्गत देखता है, उसके लिय में अदृश्य नहीं होता और वह मरे लिय अदृश्य नहीं होता। जो पुरुष एकीभावमें स्थित होकर सम्पूर्ण भूतोंमें आत्मरूपसे स्थित मुझ सिच्चिदानन्दघन वासुदेवको भजता है, वह योगी सब प्रकारसे बरतता हुआ भी मुझमें ही बरतता है।'

आजके इस अत्यन्त संकीर्ण स्वार्थपूर्ण जगत्में दूसरेके सुख-दु:खको अपना सुख-दु:ख समझनेकी शिक्षा देनेके साथ-साथ कर्तव्य-कर्मपर आरूढ़ करानेवाला और कहीं भी आसक्ति-ममता न रखकर केवल भगवत्सेवाके लिये ही यज्ञमय जीवन-यापन करनेकी सत्-शिक्षा देनेवाला सार्वभौम ग्रन्थ 'श्रीमद्भगवद्गीता' ही है। इस ग्रन्थका विश्वमें जितना अधिक वास्तविक रूपमें प्रचार-प्रसार होगा, उतना ही मानव सच्चे सुख-शान्तिकी ओर बढ़ सकेगा।

मार्गशीर्ष शुक्ल ११ (एकादशी), रिववार, दिनाङ्क ८ दिसम्बर, २०१९ ई०को श्रीगीता-जयन्तीका महापर्व दिवस है। इस पर्वपर जनतामें गीता-प्रचारके साथ ही श्रीगीताके अध्ययन—गीताकी शिक्षाको जीवनमें उतारनेकी स्थायी योजना बननी चाहिये। आजके किंकर्तव्यविमूढ़ मोहग्रस्त मानवके लिये इसकी बड़ी आवश्यकता है। इस पर्वके उपलक्ष्यमें श्रीगीतामाता तथा गीतावक्ता भगवान् श्रीकृष्णका शुभाशीर्वाद प्राप्त करनेके लिये नीचे लिखे कार्य यथासाध्य और यथासम्भव देशभरमें सभी छोटे-बड़े स्थानोंमें अवश्य होने चाहिये—

(१) गीता-ग्रन्थ-पूजन। (२) गीताके वक्ता भगवान् श्रीकृष्ण तथा गीताको महाभारतमें ग्रथित करनेवाले भगवान् व्यासदेवका पूजन। (३) गीताका यथासाध्य व्यक्तिगत और सामूहिक पारायण। (४) गीता-तत्त्वको समझने-समझानेके हेतु गीता-प्रचारार्थ एवं समस्त विश्वको दिव्य ज्ञानचक्षु देकर सबको निष्कामभावसे कर्तव्य-परायण बनानेकी महती शिक्षाके लिये इस परम पुण्य दिवसका स्मृति-महोत्सव मनाना तथा उसके संदर्भमें सभाएँ, प्रवचन, व्याख्यान आदिका आयोजन एवं भगवन्नाम-संकीर्तन आदि करना-कराना। (५) महाविद्यालयों और विद्यालयोंमें गीता-पाठ, गीतापर व्याख्यान, गीता-परीक्षामें उत्तीर्ण छात्र-छात्राओंको पुरस्कार-वितरण आदि। (६) प्रत्येक मन्दिर, देवस्थान, धर्मस्थानमें गीता-कथा तथा अपने-अपने इष्ट भगवान्का विशेषरूपसे पूजन और आरती करना। (७) जहाँ किसी प्रकारकी अङ्चन न हो, वहाँ श्रीगीताजीकी शोभायात्रा (जुलूस) निकालना। (८) सम्मान्य लेखक और कवि महोदयोंद्वारा गीता-सम्बन्धी लेखों और सुन्दर कविताओंके द्वारा गीता-प्रचार करने और करानेका संकल्प लेना, तदर्थ प्रेरणा देना और (९) देश, काल तथा पात्र (परिस्थिति)-के अनुसार गीता-सम्बन्धी अन्य कार्यक्रम अनुष्ठित होने चाहिये।

गीता-दैनन्दिनी—गीता-प्रचारका एक साधन

(प्रकाशनका मुख्य उद्देश्य—िनत्य गीता-पाठ एवं मनन करनेकी प्रेरणा देना।) व्यापारिक संस्थान दीपावली/नववर्षमें इसे उपहारस्वरूप वितरित कर गीता-प्रसारमें सहयोग दे सकते हैं। गीता-दैनन्दिनी (सन् २०२०)-के सभी संस्करण अब उपलब्ध

पूर्वकी भाँति सभी संस्करणोंमें सुन्दर बाइंडिंग तथा सम्पूर्ण गीताका मूल-पाठ, बहुरंगे उपासनायोग्य चित्र, प्रार्थना, कल्याणकारी लेख, वर्षभरके व्रत-त्योहार, विवाह-मुहूर्त, तिथि, वार, संक्षिप्त पञ्चाङ्ग, रूलदार पृष्ठ आदि। पुस्तकाकार—विशिष्ट संस्करण (कोड 1431)—दैनिक पाठके लिये गीता-मूल, हिन्दी-अनुवाद, मूल्य ₹ ८५ बँगला (कोड 1489), ओड़िआ (कोड 1644), तेलुगु (कोड 1714) प्रत्येकका मूल्य ₹ ८५

पुस्तकाकार— सुन्दर प्लास्टिक आवरण (कोड 503)—गीताके मूल श्लोक एवं सूक्तियाँ मूल्य ₹७० पॉकेट साइज— सुन्दर प्लास्टिक आवरण (कोड 506)— गीता-मूल श्लोक, मूल्य ₹४०



LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT

LICENCE No. WPP/GR-03/2017-2019

पाठकोंसे आवश्यक निवेदन

जनवरी २०२० का विशेषाङ्क '<mark>बोधकथा-अङ</mark>्क'-जनवरीके प्रथम सप्ताहसे ही भेजनेका प्रयास है। रिजस्ट्रीसे विशेषाङ्क प्राप्त करनेके लिये सदस्यता-शुल्क यथाशीघ्र भेजें।

गीताप्रेसकी निजी दूकानोंपर भी सदस्यता-शुल्क छपी रसीद प्राप्त करके जमा कर सकते हैं। जिन सदस्योंका सदस्यता-शुल्क दिसम्बरतक प्राप्त नहीं होगा उन्हें वी०पी०पी०से विशेषाङ्क भेजा जायगा।

कल्याणके सदस्योंको मासिक अङ्क साधारण डाकसे भेजे जाते हैं। कुछ वर्षोंसे मासिक अङ्कोंके न मिलनेकी शिकायतें बहुत अधिक आने लगी हैं। सदस्योंको मासिक अङ्क भी निश्चित रूपसे उपलब्ध हो, इसके लिये वार्षिक सदस्यता-शुल्क ₹२५० के अतिरिक्त ₹२०० देनेपर मासिक अङ्कोंको भी रिजस्टर्ड डाकसे भेजनेकी व्यवस्था की गयी है। कल्याणके विषयमें जानकारीके लिये 09235400242 अथवा 09235400244 पर प्रत्येक कार्य-दिवसमें 9:30 बजेसे 12:30 बजेतक एवं 2:00 बजेसे 5:00 बजेतक सम्पर्क कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त 9648916010 पर SMS एवं WhatsApp की सुविधा भी उपलब्ध है।

वार्षिक-शुल्क-₹२५०। पंचवर्षीय-शुल्क-₹१२५०

इंटरनेटसे सदस्यता-शुल्क-भुगतानहेतु gitapress.org पर Kalyan option को click करें।

व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५

श्रीराधा-माधव अङ्क अब ग्रन्थरूपमें भी उपलब्ध

सुहृद पाठकों—श्रद्धालु भक्तोंको श्रीराधामाधवकी मधुरातिमधुर लीलाओंका दर्शन कराने हेतु जनवरी 2019 के विशेषांकरूपमें श्रीराधा-माधव अङ्कका प्रकाशन किया गया था, इसमें मुख्य रूपसे श्रीराधामाधवकी उपासनाके विविधरूप, श्यामसुन्दर एवं राधारानीकी अन्तरंग तथा बाह्यलीलाओंके सहचर, भक्तवृन्दोंकी रोचक कथाओंकी प्राथमिकता है जो साधकों तथा आस्तिकजनोंके लिये परम मंगलमय एवं हितकारी है। अब यह विशेषांक बिना मासिक अंकोंके अलगसे भी ग्रन्थरूपमें उपलब्ध है। (कोड 2235), मूल्य ₹१४०

श्रीमद्भागवतकथा आदि शुभ अवसरोंपर प्रसादस्वरूप वितरित करनेके लिये एक साथ १०० प्रति लेनेपर विशेष छूट उपलब्ध है। विशेष छूट पानेके लिये मो०नं० 8545857113 पर संपर्क करना चाहिये।

	नवीन प्रकाशन—छपकर तैयार								
कं		मूल्य ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹	कोड	पुस्तक-नाम	मूल्य ₹	
	नेपाली		2243	प्रश्नोत्तरी (स्वामिश्रीशंकराचार्यरचित)		2238	भगवान ओ ताँर भक्ति	१५	
224	🛮 नारद-भक्ति-सूत्र एवं शाण्डिल्ल	1 -		पॉकेट साइज	४	2247	वास्तविक सुख	१२	
	भक्ति-सूत्र [सरल भाषानुवादसहित]	ų	2246	श्रीमद्भगवद्गीता पदच्छेद अन्वय			असमिया		
224	😢 <mark>चेतावनी एवं साम</mark> यिक चेतावर्न	t u		 साधारण भाषाटीकासहित	દ્દપ				
224	14 संसारको असर कसरी छुट्छ?	ષ		बँगला	, ,	2239	भगवान्के रहनेके पाँच स्थान	Ę	
224	अष्टावक्रगीता (श्लोकार्थसहित)	१०	2237	भगवान ओ भक्त आलेख्य	90	2240	प्रेरक कहानियाँ	१२	

e-mail: booksales@gitapress.org—थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें।
Gita Press web: gitapress.org—सूची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें।
gitapressbookshop.in से गीताप्रेसकी खुदरा पुस्तकें Online कृरियरसे/डाकसे मँगवायें।